संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : संयुक्तांक २७ एवं २८ ● ०४ एवं ११ जून २०२४ (गुरुवार) अषाढ़ शुक्लपक्ष पंचमी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

आत्मिक बल

–स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

प्रिय पाठकगण! आजकल हमारे बहुत-से भाई किसी कार्य का आरम्भ करके उसे मध्य में ही छोड़ देते दिखलाई पड़ते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनमें उस काम के करने की शक्ति न थी। आप कहेंगे कि जब वे शिक्षित, निश्चिन्त, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हैं तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि उनमें उस कार्य करने की शक्ति न थी? हमने जहाँ तक परीक्षा की है, उससे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक कार्य का होना आत्मिक बल के अधीन है। यद्यपि शारीरिक बल और धन-बल भी सांसारिक कार्यों को करने के लिए आवश्यक हैं, परन्तु आत्मिक बल होने पर ये सब वस्तुएँ स्वयमेव जुट जाती हैं, परन्तु इनके होने पर आत्मिक बल भी हो- यह आवश्यक नहीं, और न ही इनसे आत्मिक बल उत्पन्न हो सकता है।

अब प्रश्न यह होता है कि आत्मिक बल है क्या जिसके होने से समस्त कार्य पूर्णरूप से हो सकते हैं और जिसके न होने से अनेक आवश्यक वस्तुओं की विद्यमानता में भी कार्य नहीं हो सकता? इसका उत्तर यह है कि ज्ञान और प्रयत्नवाली शक्ति को आत्मा कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न उसके गुण कहलाते हैं। इन गुणों के बढ़ने का नाम बल का बढ़ना कहलाता है। बस, आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की निर्बलता आत्मिक निर्बलता है और ज्ञान व प्रयत्न की वृद्धि ही आत्मिक बल है।

हमारे बहुत-से मित्र कह देंगे कि "न्यायशास्त्र" में जीवात्मा के ये लक्षण लिखे हैं-सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। तुमने पहले चार क्यों छोड़ दिये, और अन्त के दो क्यों रख लिये? इसका उत्तर यह है कि पहले चार इसलिए छोड़ दिये, क्योंकि वे शरीर और आत्मा के गुण हैं। उदाहरणसहित देखिए- कोई मनुष्य हाथ से लकड़ी को कुल्हाड़ी की शक्ति से काटता है। यह लकड़ी काटना कुल्हाड़ी से मिले हुए हाथ का कार्य है, केवल हाथ का नहीं, क्योंकि न तो बिना कुल्हाड़ी के हाथ काट सकता है और न ही बिना हाथ की सहायता के कुल्हाड़ी काट सकती है। जब दोनों में से पृथक् पृथक् कोई भी काटने की शक्ति नहीं रखता और मिलकर बराबर काट सकते हैं तो वह मिले हुओं का धर्म है, एक का नहीं। इसी प्रकार सुख-दुःख, और इच्छा-द्वेष सूक्ष्मशरीर के साथ आत्मा को प्रतीत होते हैं न अकेले आत्मा को प्रतीत होते हैं और न अकेले शरीर को। यदि इन्हें अकेले आत्मा के गुण मान लिया जाए तो सुषुप्ति की दशा में भी इनका अनुभव होना चाहिए, परन्तु सुषुप्ति की दशा में किसी को भी सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष विदित नहीं होते। इससे निश्चय होता है कि ये आत्मा के धर्म नहीं। यदि इन्हें अकेले शरीर का धर्म मान लें तो ये मृतक में भी होने चाहिएँ, परन्तु मृतक में ये गुण होते नहीं। इससे ज्ञात होता है कि ये गुण आत्मा और शरीर के मिलने पर उत्पन्न होते हैं।

प्रिय पाठक महाशयो। हमारे अनेक मित्र कहेंगे कि सुषुप्ति-काल में आत्मा में कोई ज्ञान नहीं रहता, इसी कारण उस समय सुख-दुःख आदि विदित नहीं होते, अन्यथा आत्मा में ये सदैव रहते हैं, परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा किसी काल में भी ज्ञान और गुण प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता। किसी द्रव्य के गुण उसकी विद्यमानता में उसे छोड़कर जा ही नहीं सकते, फिर किस प्रकार माना जा सकता है कि द्रव्य (आत्मा) के विद्यमान होने पर उसके गुण ज्ञान और प्रयत्न उससे पृथक् हो जाएँ? जब प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है तो द्रव्य के अस्तित्व की स्थिरता के लिए गुणों का होना आवश्यक है।

परन्तु बहुत से मित्र यह कहेंगे कि फिर क्या कारण है कि सुषुप्ति की दशा में ज्ञान प्रतीत नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि ज्ञान दो प्रकार का है-एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान वह है जो बिना किसी इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध के बना रहता है, जैसे अपने होने का ज्ञान। दूसरा ज्ञान पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, जैसे-रूप-ज्ञान के लिए रूपवाली वस्तु और

रूप के ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय अर्थात् चक्षु और रूप के प्रकाश करने की शक्ति जैसे सूर्य, दीपक इत्यादि का होना आवश्यक है। आत्मा ज्ञानी होने पर भी बिना इन तीन पदार्थों के रूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। शब्द-ज्ञान के लिए काल, आकाश और शब्द का होना आवश्यक है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान बिना साधनों के नहीं हो सकता, परन्तु अपने ज्ञान अथवा आन्तरिक पदार्थों के जानने के लिए किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं।

प्यारे पाठको! ऊपर के दृष्टान्तों से आपने समझ लिया होगा कि जिन पदार्थों के लिए साधनों की आवश्यकता है वे बाह्य पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान बिना साधनों के होता है वह उसका अपना गुण है। अब सुख-दुःख, इच्छा द्वेष का होना बिना मन की वृत्तियों के संयोग के नहीं हो सकता। जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं तो इच्छा उत्पन्न होती है। जब उसे बुरा समझते हैं तो उसमें द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जिस पदार्थ का संयोग आत्मा के अनुकूल प्रतीत होता है, उसे सुख मानते हैं। जो आत्मा के प्रतिकूल प्रतीत होता है, उसे दुःख कहते हैं। इसलिए ये गुण मन के कारण उत्पन्न होते हैं। सुषुप्तिकाल में जब इन्द्रिय, मन और बुद्धि अपना-अपना काम छोड़ देते हैं तब सुख-दुःख, इच्छा द्वेष सर्वथा नहीं रहते। केवल ज्ञान और प्रयत्न जो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, वे शेष रह जाते हैं। अब यह शङ्का होगी कि सुषुप्ति-काल में आत्मा को किस वस्तु का ज्ञान रहता है और वह किसके लिए प्रयत्न करता है? इसका उत्तर यह है कि सुषुप्तिकाल में आत्मा को अपने होने का ज्ञान होता है और वह शरीर की उस न्यूनता को, जो जाग्रदवस्था के दुःखों से उत्पन्न हो गई है, पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है।

हमारे बहुत-से मित्र यह कहेंगे कि जब गौतम ऋषि ने अपने दर्शन में जीवात्मा के छह गुण माने हैं और महर्षि कणाद ने इससे भी अधिक, तो तुम्हारा कहना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। इसका समाधान यह है कि हमारे ऐसे मित्रों को महात्मा गौतम का दूसरा सूत्र भी पढ़ लेना चाहिए, जिसमें उन्होंने इन चारों गुणों को मिथ्याज्ञान की सन्तान में बतलाया है। इसलिए ये चार गुण जीवात्मा के नहीं हो सकते। प्रिय पाठको! महात्मा कणादजी ने अपने वैशेषिक शास्त्र में आत्मसंयोग से ही कर्म माना है। बिना आत्मा के कर्म हो ही नहीं सकता। उन्होंने लिखा है-

"आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म॥" बै० ५।१।१

जब आत्मा का हाथ के साथ सम्बन्ध होता है तभी हाथ में कर्म, अर्थात् कार्य करने की शक्ति होती है, बिना आत्मा के संयोग के नहीं। तथा "हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म।।" वै० ५।१।२

और जब आत्मा से युक्त हाथ मूसल से सम्बन्ध जोड़ता है तो मूसल में कार्य की शक्ति आ जाती है। यहाँ हाथ से तात्पर्य सारे शरीर के अङ्ग हैं और मूसल से सर्व प्रकार के बाहरी शस्त्र, अर्थात् साधन, जिनसे मनुष्य कार्य लेते हैं, समझने चाहिएँ।

मित्रवर्ग। जब यह ज्ञात हो गया कि आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न दो गुण हैं और इन दोनों की वृद्धि का नाम आत्मिक बल और घटने का नाम आत्मिक बल की हानि है। तब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इनके बढ़ने और घटने का कारण क्या है? इसका उत्तर यह है कि संसार में हमें एक नियम विदित होता है कि जहाँ जिसके अनुकूल पदार्थ मिलते हैं वहाँ उसकी उन्नति होती है, जहाँ विरुद्ध पदार्थ मिलते हैं वहाँ हानि जैसे- वर्षा ऋतु में जब चारों ओर पानी बरस रहा हो और ठण्डी पवन के झोंके वेग से चल रहे हों, उस समय यदि आप एक दियासलाई की तीली जलाएँगे तो कठिनता से जलेगी, परन्तु यदि उसे ग्रीष्म ऋतु में जब लू अर्थात् गर्म वायु बह रही हो जलाना चाहो, तो बड़ी सरलता से जल जाएगी। दूसरे, यदि रोगी को जिसे गर्मी के कारण ज्वर आता है, गर्म ओषधि देते चले जावें तो गर्मी के बढ़ने से रोग बढ़ता जाएगा, यदि ठण्डी ओषधियाँ दी जाएँ तो रोग निवृत्त हो जाएगा। इससे प्रकट है कि अनुकूल पदार्थों के संयोग से उन्नति और विरुद्ध पदार्थों के संयोग से हानि होती है।

अब जानना चाहिए कि कौन-कौन-से पदार्थ हैं जो आत्मा को मिलते हैं? उनमें कौन- कौन अनुकूल और कौन-सी वस्तु प्रतिकूल है? इसपर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे दो ही पदार्थ हैं-एक प्रकृति, दूसरा परमेश्वर, जिनसे आत्मा का सम्बन्ध होता है। जीव चैतन्य और शरीर के सम्बन्ध से गतिवाला है, प्रकृति परिवर्तनशील और ज्ञानशून्य है, परमेश्वर ज्ञानस्वरूप, स्वाभाविक क्रियावान् और आनन्दस्वरूप है।

प्रिय पाठक। जब प्रकृति ज्ञानशून्य तथा क्रियारहित है और जीव ज्ञानसहित और क्रियावान है तो जब वह प्रकृति से अपना सम्बन्ध करेगा तो उससे ज्ञान और क्रिया की उन्नति तो होगी नहींय हाँ, प्रकृति के गुण उसमें आ जाएँगे। यद्यपि प्रकृति में जीव के सम्बन्ध से क्रिया उत्पन्न हो जाएगी, और संयोग से ज्ञान का भी कुछ अंश प्रतीत होगा, परन्तु जीव के ये दोनों गुण न्यून होते चले जाएँगे। जितनी प्राकृतिक शक्तियाँ बढ़ती जाएँगी, उतनी ही आत्मिक शक्तियाँ न्यून होती चली जाएँगी। दूसरी ओर जब आत्मा ज्ञानस्वरूप और क्रियावान् परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ेगा तो उसके ज्ञान और क्रिया की शक्ति अधिक होती जाएगी, जैसे जितने अधिक समय तक दीपशलाका धूप में पड़ी रहेगी, उतनी ही उसके जलने की शक्ति तीव्र होती चली जाएगी।

भ्रातृवर्ग! अब इस प्रश्न का समाधान तो हो गया कि आत्मा में बल कहाँ से आता है और निर्बलता कहाँ से आती है। हमारे बहुत-से मित्र कहेंगे कि यह केवल कथनमात्र ही है, परन्तु यदि वे विचारपूर्वक लौकिक

क्रमशः.....८ पर

वेदामृतम्

जातः परेण धर्मणा, यत् सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत् कश्यपस्याग्निः, श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ साम-६०

हे जीवात्मन् ! तुमने निराले साज के साथ इस देह में जन्म लिया है। तुम राजा बनकर देह-भवन में बैठे हो और मन, बुद्धि, प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ सेवक-कर्म- चारियों के रूप में तुम्हारे साथ हैं, जो सदा तुम्हारी आज्ञा के पालन के लिए तत्पर हैं। तुम्हारा यह देह-रूप प्रासाद बड़े-बड़े राजकीय प्रासादों से भी विलक्षण है। विश्व में कोई भी ऐसा घर, महल या प्रासाद नहीं है जो सचेतन होकर स्वयं चलना-फिरना, देखना-सुनना आदि क्रियाएँ करता हो, पर यह देह-प्रासाद तुम्हारे और तुम्हारे साथ रहने वाले इतर कर्मचारियों के प्रवेश से चेतनामय हो गया है। जब तुम विचार करना चाहते हो तब मन-रूप सेवक तुरन्त विचारधारा प्रवाहित करने लगता है। जब तुम बोध प्राप्त करना चाहते हो तब बुद्धि अपना व्यापार ग्रारम्भ कर देती है। जब तुम बाह्य दृश्यों को देखना, बाह्य शब्दों को सुनना, बाह्य रसों का स्वाद लेना, बाह्य गन्धों को सूंघना या बाह्य पदार्थों का स्पर्श करना चाहते हो तब तत्क्षण तुम्हारी सेवा में चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण या त्वचा उपस्थित हो जाते हैं, और तुम्हारे आदेशानुसार उस-उस लोक में विचरण कराने लगते हैं। ऐसे अनुपम प्रासाद में ऐसे आज्ञाकारी सेवकों के साथ तुम विराजमान हो।

हे आत्मन् ! तुम 'कश्यप' हो, परिद्रष्टा हो। हम लोकव्यवहार में चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों को द्रष्टा, श्रोता आदि कह देते हैं, पर वे तो दर्शन, श्रवण आदि में सहायक तुम्हारे सेवक-मात्र हैं। असली द्रष्टा, श्रोता, अनुभवकर्ता तो तुम्हीं हो और तुम्हारी महिमा इसीसे आंकी जा सकती है कि 'अग्नि' नामक तेजस्वी परमेश्वर तुम्हारे पिता हैं, श्रद्धा देवी तुम्हारी माता हैं। अपने इन दिव्य पिता-माता के संरक्षण में तुम लालित-पालित होते हो। जिन पिता-माता को पाने में कोई भी व्यक्ति स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर सकता है, वे तुम्हें अनायास मिले हुए हैं।

हे देह-पुरी के राजा ! तुम स्वयं भी तो महान् हो। तुम 'मनु' हो, मननशील हो । तुम 'कवि' हो, क्रान्तप्रज्ञ हो। तुम अपने इस गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखो। तुम अपने • पिता 'अग्नि' के अनुरूप तेजस्वी बनकर रहो, तुम अपनी माता 'श्रद्धा' के अनुरूप श्रद्धालु बनकर रहो। तुम सदा मन्ता और बोद्धा बने रहो।

साभार-वेदमंजरी

वेदों पर आक्षेप मूर्खता

–आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत।। - ऋग्वेद ६/१३/६ आधिभौतिक भाष्य १- (पवमानाः, स्वर्दृशः)

सूर्य के समान तेजस्वी वेदवित् पवित्रात्मा व पुरुषार्थी राजा (अपघ्नन्तः, अराव्णः) ऐसे नागरिक, जो धनवान् होने पर भी राष्ट्रहित में न्यायकारी राजा द्वारा लिये जाने वाले 'कर' का भुगतान न करते हों अथवा 'कर' चोरी करते हैं अथवा आवश्यक होने पर किसी निर्धन का अथवा परोपकार के कार्य में आर्थिक सहयोग नहीं करते हैं अथवा समाज और राष्ट्र के हितों के विरोधी वा उदासीन होते हैं, उन्हें राजा उचित दण्ड देता हुआ (ऋतस्य, योनौ, सीदत) (ऋतम् - ब्रह्म वाऽऋतम् (श.४.१.४.१०), सत्यं विज्ञानम् (म.द.क्र.भा.१.७१.२) समस्त ज्ञान-विज्ञान के मूल वेद के कारण रूप परब्रह्म परमात्मा में निवास करता है।

भावार्थ- किसी भी राष्ट्र का राजा शरीर, मन और आत्मा से पूर्ण स्वस्थ और बलवान् होना चाहिए। ऐसा राजा ही सतत पुरुषार्थ करने वाला हो सकता है। शरीर, मन वा आत्मा में से किसी के निर्बल वा रोगी होने पर कोई भी राजा राष्ट्र के संचालन में समर्थ नहीं हो सकता। इसके साथ ही जब तक राजा ज्ञान-विज्ञान से पूर्णतः सम्पन्न नहीं हो, तब तक भी राजा राष्ट्र का उचित संचालन नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसे राजा को उसके चाटुकार, चालाक-स्वार्थी मन्त्री, प्रशासनिक अधिकारी, वैज्ञानिक, पूँजीपति एवं दूसरे देशों के राजा भ्रमित करके अपना

क्रमशः.....७ पर

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्द यानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री भाई परमानन्द जी का व्याख्यान

भाइयो और बहनो ! बहुत दिनों से मेरी व्याख्यान देने की श्रद्धा नहीं बढ़ी मैं सोचता था कि मुझे आपके सामने खड़ा होना चाहिये या नहीं। मगर मेरी आत्मा के ऊपर एक बोझ था जिसका उतारना आवश्यक था । अगर मैं न बोलता तो पाप का भागी बनता । जितने भाई और बहन इस उत्सव में सम्मिलित हुए हैं वह विविध उद्दे श्यों से आये हैं। कोई खेल के लिए, कोई सैर के लिए, कोई व्याख्यान सुनने के लिये । परन्तु आये हम सब उसी ऋषि की शताब्दी मनाने के लिए हैं, अब हम घर पर कुछ विचार करेंगे। प्राचीन काल के इतिहास को देखिये, जब देश का अधःपतन आरम्भ हुआ तब सब वेद के मानने बाले थे। फिर यज्ञ का युग प्रारम्भ हुआ। लोगों की यज्ञ में श्रद्धा बढ़ी उसका बहुत प्रभाव बढ़ा। इसके बाद बौद्ध मत का बहुत दौर-दौरा हुआ। महात्मा बुद्ध ने एक प्रकार से यज्ञों के विरुद्ध युद्ध किया और लोगों को शुभ कर्मों के साधनों से भी मुक्ति दिलाई। महात्मा बुद्ध ने अपने प्रचार के लिये संघ स्थापित किये। ये भिक्षुक बन कर जंगल में बसते और धर्म प्रचार करते थे । बौद्ध धर्म के पश्चात् दार्शनिकता पर धर्म की स्थापना की पर और बौद्ध धर्म को निकालने की कोशिश की फिर तलवार का जोर हुआ और मुसलमान बनाने के लिए तलवारें चलीं। इन दिनों बहुत से आदमी निकले। तुकाराम, भक्त तुलसीदास आदि ने हिन्दू धर्म की जड़ों को सुदृढ़ बनाया। उन दिनों हजारों हिंदू सारे जाते परन्तु इस्लाम स्वीकार न करते । अन्त में एक ऐसी लहर उठी जिसने हवा और सूर्य के झगड़े की तरह काम किया। ह्वा कुछ न कर सकी और सूर्य ने धीरे-धीरे सब कुछ कराया, अर्थात् इस्लाम जिस हिंदू जाति को दूर न कर सका उसे ईसाइयों ने पश्चिमी सभ्यता से दूर करना प्रारम्भ किया। जनेऊ टूट गये, चोटियां कट गयीं । स्वामी दयानन्द ने इनका इलाज किया। बहुत से इलाजों में से एक इलाज यह था कि आर्य समाज की स्थापना की, इन सब प्रयत्नों के अन्तर्गत एक भाव था, वह यह कि देश धर्म का उद्धार कैसे हो ? उन्होंने संस्कार और तर्क पर जोर दिया। इस समय मेरे हृदय में एक विशेष बात है जिसे निवेदन करता हूँ। कोहाट में आर्य, सनातनी आदि सब रहते थे । हिन्दुओं की चार-पांच हजार की आबादी थी। वह सब आज अपने शहर को छोड़ कर दूसरे शहर में हैं। इस समस्या की पूर्ति करनी है और सोचना है कि हम देश धर्म को केसे स्थिर रख सकते हैं। महात्मा गांधी अभी इस घटना के सम्बन्ध में रावलपिंडी गए थे। वहां के मुसलमानों को भी निमन्त्रित किया था। मगर वह मुसलमान जो सरकार के साथ बात चीत करते थे न आये, परन्तु जो उपद्रव के कारण समझे जाते थे, वे आये। महात्मा जी के साथ बातचीत करने से मालूम हुआ कि लड़ाई का मूल कारण 'कृष्ण-सन्देश' नामक पुस्तक न थी-अपितु यह बात थी कि मुसलमान हुए लोगों को वापिस लेने के लिये उन्हें शुद्ध करते हैं। वहां पर उन्होंने बतलाया कि डेढ़ सौ नर नारी प्रतिवर्ष मुसलमान बनते थे। महात्मा जी ने पूछा कि स्त्रियों को किस प्रकार मुसलमान बनाया जाता है। उत्तर मिला कि जो विवाहिता होती हैं, मुसलमान होने के बाद उनकी पहली शादी मंसूख हो जाती है। महात्मा जी ने रात भर सोच कर बतलाया कि इस बातचीत से उनके आत्मा में एक परिवर्तन पैदा हो गया है। उपद्रव के पूर्व मुसलमानों ने हिंदुओं का इसी कारण बहिष्कार कर दिया था। मैं कहता हूँ कि मेल मिलाप हो, स्वराज्य हो, अवश्य हो। परन्तु मैं देखता हूँ कि एक बात मुसलमानों के हृदय में काम करती है कि सब को मुसलमान बना लें। लाहौर में कई मुहल्ले ऐसे हैं जहां कि कई बार मुसलमानों ने हिन्दू स्त्रियों को छिपाये रक्खा । एक जगह पता लगा तो दूसरी जगह ले गये । आर्य समाज का गौरव तभी बढ़ सकता है जब वह हिन्दू जाति की रक्षा का भार अपने ऊपर ले। आर्य समाज हिन्दू जाति की रक्षा के लिए बना है। स्वामी दयानन्दने इसी डूबती नैया को बचाया था। इस बात के लिए उन्होंने सब कुछ बलिदान कर दिया । अगर आर्य समाजी ऐसा करेंगे तो इससे स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द जी की आत्मा का मिशन पूरा होगा। आप इससे सहमत न हों परन्तु मैंने अपने हृदय का भाव आपके सम्मुख रख दिया है । अगर कप्तान अच्छा हो तो वह जहाज को तूफान से निकाल लेगा । अगर न निकल सकेगा तो जहाज के दूसरे यात्रियों के साथ वह भी डूब जायगा । यही हाल आर्यसमाज का है। ऋषि दयानन्द का मिशन तब पूरा होगा जब कि सच्चे क्षत्रिय, सच्चे ब्राह्मण और सच्चे देशभक्त पैदा होंगे । कोहाट के उपद्रव में कई आदमियों ने सच्चे क्षत्रियों की भाँति काम किया। एक काहनसिंह ने चार पांच घण्टे अकेले सारे मुहल्ले को बचाये रक्खा । बाद को पकड़ कर मार दिया गया । एक स्त्री ने अपने घायल पति की रक्षा की और तब तक जाने से इन्कार किया जब तक उसे लाया न जा सका। इसी तरह आज हमारा प्रधान कर्तव्य आत्म-रक्षा होगा। अगर आर्यसमाज कर्तव्य सिखलायेगा तो वह हिन्दू जाति का प्रधान अंग बन जायगा। शताब्दी के पवित्र अवसर पर धर्म को बचाओ । धर्म को बचाइये, वह आपकी रक्षा करेगा। अन्त में भाई जी ने स्त्रियों से प्रार्थना की कि वे अपने आपको और अपनी पुत्रियों को इस काम के लिये तैयार करें।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

५७-ये अल्लाह की हदें हैं जो अल्लाह और उनके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा जिन में नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है। जो अल्लाह की और उस के रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उस की हदों से बाहर हो जायगा वो सदैव रहने वाली आग में जलाया जावेगा और उस के लिये खराब करने वाला दुःख है॥

-मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३६१४।

(समीक्षक) खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैगम्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद कुरान ही में लिखा है। और देखो! खुदा पैगम्बर साहेब के साथ कैसा फंसा है कि जिस ने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। किसी एक बात में भी मुसलमानों का खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं॥ ५७॥

५८-और एक असरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता। और जो भलाई होवे उस का दुगुण करेगा उस को॥

- मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ४०॥

(समीक्षक) जो एक त्रसरेणु के बराबर भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य को द्विगुण क्यों देता ? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है? वास्तव में द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देवे तो खुदा अन्यायी हो जावे॥ ५८॥

५९-जब तेरे पास से बाहर निकलते हैं तो तेरे कहने के सिवाय (विपरीत) शोचते हैं। अल्लाह उन की सलाह को लिखता है। अल्लाह ने उन की कमाई वस्तु के कारण से उन को उलटा किया। क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुए को मार्ग पर लाओ ? बस जिस को अल्लाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा॥

- मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८१-८८॥

(समीक्षक) जो अल्लाह बातों को लिख बहीखाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं। जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम ? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सब को बहकाने से दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीवों को गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां! इतना भेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शैतान, वह छोटा शैतान। क्योंकि मुसलमानों ही का कौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है तो इस प्रतिज्ञा से खुदा को भी शैतान बना दिया॥ ५९॥

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

स्वा०- ये दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं क्योंकि ये दोनों ही सच्ची है। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे वह शब्दों के बिना नहीं हो सकता । उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग अलग होने पर होती है क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण । परमेश्वर चूं कि सर्वव्यापक है इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था। परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उनके अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया । जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना, सिखा देता है उसी प्रकार परमेश्वर ने जिसकी विद्या व्यापक है और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था, उनको सिखा दिया। ये बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं। जो इनको बुद्धिविरुद्ध कहे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे। पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं, वे वहीं तक सत्य हैं जहाँ तक वेदविरुद्ध न हों। और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि, वे प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, नितान्त झूठे हैं।

मौ०- पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

स्वा०- वह प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०-जब वेद विद्या की पुस्तक हैं और पुराण मत की पुस्तकें हैं और आपके कथनानुसार असत्य हैं तो आर्यों का धर्म क्या है ?

स्वा०-धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो। वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्य्यों का प्राचीन धर्म है और पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०- पक्षपात आप किसको कहते हैं ?

स्वा०-जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिये न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है, वह पक्षपात कहलाता है ।

मौ०- यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य न हो तो आये लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं।

स्वा०- विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा अधर्म से सम्बन्धित नहीं मानते प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है। इसके ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मतवाले के साथ इन दोनों कार्यों में सम्मिलित होना हानिकारक है इसलिए करना अनुचित है। जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है और यदि कोई विद्वान् उनसे पृथक् हो जावे तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रखेगी। सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना और दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं ।

आर्यसमाज का वेद-विषयक दृष्टिकोण

डॉ० गंगा प्रसाद उपाध्याय

श्रीयुत पं० जवाहरलाल नेहरू जी ने अभी हाल में एक उत्तम पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' (Discovery of India)। उसमें अनेक उत्तम-उत्तम बातों के अतिरिक्त आर्यसमाज और वेदों के विषय में दो उल्लेखनीय वाक्य हैं-

१. Many Hindus look upon the Vedas as revealed scriptures- This seems to me to be peculiarly unfortunate for thus we miss their real significance the unfolding of the human mind in the earliest stages of thought-

२. Its slogan was back to the Vedas. This slogan really meant an elimination of development of the Aryan faith since the Vedas.

१. बहुत से हिन्दू वेदों को ईश्वर-कृत मानते हैं। मैं इसको बड़ा दुर्भाग्य समझता हूं, क्योंकि इसमें वेदों की वास्तविक उपयोगिता जाती रहती है अर्थात् विचार के आरंभ-काल में मानवी मस्तिष्क ने कितना विकास किया।

२. आर्य समाज ने घोषणा की कि 'वेदों की ओर लौटो'। इस घोषणा का अर्थ यह है कि वेदों के काल से लेकर आर्य धर्म में जो विकास हुआ उसका परित्याग कर दिया जाए।

इन दोनों वाक्यों का एक-दूसरे से सम्बन्ध है। अर्थ प्रायः एक ही है अर्थात् वेदों की यह उपयोगिता तो है कि संसार के आरंभकाल में मानवी मस्तिष्क ने जो उन्नति की उसका पता लग जाए, परंतु यदि हम वेदों को ईश्वर-कृत मान लें तो वेद आज भी आचरण करने योग्य पुस्तक सिद्ध हो जाते हैं। ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण वेदों के विषय में श्री पं. जवाहरलाल से भिन्न था और आजकल के संस्कृतज्ञों का लगभग वही दृष्टिकोण है जो पं. जवाहरलाल जी का। परंतु यह तो निश्चित है कि स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण वही है जो प्राचीन ऋषियों का है। यहां तक कि श्री शंकराचार्य जी आदि मध्यकालीन आचार्य भी वेदों को ईश्वरकृत ही मानते आए हैं। श्री शंकर स्वामी ने बौद्धों का खण्डन भी इसीलिए किया था कि वे श्रुति को स्वतः प्रमाण मानते हैं। वे लिखते हैं कि वेद सूर्यवत् स्वतः प्रमाण हैं। अन्य शास्त्रों को उन्होंने स्मृति की कोटि में गिना है जो परतः प्रमाण हैं।

पं० जवाहरलाल जी का कहना है कि हम वेदों का मान तो करते हैं परन्तु हम आज उन पर चलने के लिए तैयार नहीं। दृष्टान्त के तौर पर आप आज स्टीवेन्सन के रैकिट नामक इंजन को लीजिए। यह सबसे पहला इंजन था। रेलगाड़ी के इतिहास में जार्ज स्टीवेन्सन का नाम अमर रहेगा और रैकिट को लोग बड़े सम्मान से याद करते हैं क्योंकि जितने इंजन आजकल चल रहे हैं या जितने भविष्य में चलेंगे उन सबका आदि-पुरुष (लकड़दादा) रैकिट था। परन्तु कोई इंजन चलानेवाला आज रेल में रैकिट को लगाने के लिए तैयार न होगा। रैकिट इंजनों का पूर्वज तो है, परन्तु विकसित नहीं है। आजकल उन्नति करते-करते इंजनों में बहुत बड़ा सुधार हो गया है। यही हाल वेदों का है। वेद हमारी प्राचीनतम पुस्तकें हैं, हमारे ऋषियों की महती कृति हैं, परन्तु उस समय से लेकर आज तक इतनी उन्नति हो चुकी है कि वेदों की हम पूजा कर सकते हैं, परन्तु उनके अनुकूल आचरण नहीं कर सकते। वेदों का मूल्य तो है परन्तु ऐतिहासिक, न कि व्यावहारिक वे पुराने सिक्के हैं- अद्भुतालय में रखने के योग्य, प्रदर्शनी में प्रदर्शन के योग्य। परन्तु इस योग्य नहीं कि आधुनिक काल में उनको पथ-प्रदर्शक समझा जा सके।

यह है मौलिक भेद पं० जवाहरलाल जी के दृष्टिकोण में और आर्य समाज के दृष्टिकोण में। और यदि पण्डित जी की बात ठीक है तो आर्य समाज की नींव ही धड़ाम से नीचे आ गिरती है और ऋषि दयानन्द का किया-कराया सब नष्ट हो जाता है। वेदों का ऐतिहासिक मूल्य तो ईसाई और मुसलमान भी मानने के लिए तैयार हैं। प्रत्येक पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य है क्योंकि वह अपने युग के विषय में कुछ बताती है, परन्तु इतने से वह धार्मिक पुस्तक नहीं हो सकती।

यहां एक प्रश्न उठता है और वह वेदों की आन्तरिक साक्षी पर निर्भर है- क्या वेदों की शिक्षा ऐसी है, जैसे मनुष्य के बचपन की चीज होती है अर्थात् अधूरी और धुंधली? और जो वेदों के पश्चात् मनुष्यों ने वेदों के अतिरिक्त जो कुछ अन्वेषण किया वह अधिक स्पष्ट और अधिक पूर्ण है? क्या यह ज्ञात होता है कि जैसे तेल का मिट्टी का दीपक मनुष्य ने पहले बनाया, और अब बिजली के बल्ब बनाए जो अधिक उपयोगी और अधिक पूर्ण है, इसी प्रकार वेदों में जो सिद्धान्त दिए गए हैं, वे अपूर्ण और धुंधले हैं और आजकल जो विकास हुआ है वह अधिक तात्त्विक, अधिक उपयोगी और स्पष्ट है?

यह बात तो ठीक है कि वेदों का आविर्भाव मानव-जाति के बाल्यकाल की चीज है, परन्तु बाल्यकाल का अर्थ है क्या? इसके दो अर्थ हो सकते हैं। पहला यह कि जब वेदों का आविर्भाव हुआ तो मानव-जाति को उत्पन्न हुए बहुत समय व्यतीत नहीं हुआ था। सृष्टि के कितने पदार्थ हैं तो मानव-जाति के बाल्यकाल में हुए परन्तु वे सर्वथा पूर्ण थे, जैसे सूर्य, चन्द्र, वायु आदि। सूर्य में तत्पश्चात् क्या उन्नति हुई यह कहना कठिन है। दूसरा अर्थ यह है कि मनुष्य के अपने बाल्यकाल में जो वस्तुएं बनाई वे सर्वथा अविकसित थीं, आरम्भ-मात्र थीं। शनैः-शनैः उत्तरोत्तर उन्नति होती गई, जैसे कपड़े, मकान, बर्तन इत्यादि। अब प्रश्न यह है कि जब हम कहते हैं कि वेद मानव-जाति के बाल्यकाल की वस्तु है तो इन दोनों में से हमको कौन-सा अर्थ अभिप्रेत है? यदि वेदों को मनुष्य ने अनुभवशून्य और अधमतम अवस्था में आरम्भ किया जैसे बच्चा आरम्भ में पाठशाला में भरती होते किया करता है, तो वेदों का शब्दविन्यास सर्वथा संकुचित, वेदों का अलंकार हर प्रकार से भोंडे वेदों के भाव सर्वथा अशिक्षित, अनुभवशून्य, वेदों के छन्द सर्वथा बेतुके होने चाहिएं और वेदों के पश्चात् आने वाली पुस्तकों की भाषा विकसित, भाव परिमार्जित, सिद्धान्त पूर्ण दार्शनिक, युक्तियां सर्वथा विशद, अलंकार सर्वथा समुन्नत और कोमल होने चाहिएं। वेदों की भाषा और भावों में वर्तमान ग्रन्थों की भाषा और भाव की अपेक्षा उतनी ही कमी होनी चाहिए, जितनी आजकल के वायुयान और पुरानी भैंसों की गाड़ी में है। यदि ऐसा है तो हम मान लेंगे कि वेदों का ईश्वरकृत होना गलत है और वेद हमारे पूर्वजों की उस समय की कृति है, जब उन्होंने उन्नति का मार्ग बनाना आरम्भ ही किया था। अभी भूमि-खनन ही आरम्भ हुआ था। सीमेंट की सड़क की स्वच्छता और सुगमता प्राप्त न थी। यदि ऐसा ठीक है तो यह भी कहना पड़ेगा कि वेद हमारी पूजा के योग्य अवश्य हैं क्योंकि वे पुराने हैं, परन्तु वे प्रयोग में लाने के योग्य नहीं।

और यदि पहला अर्थ है अर्थात् वेदों की भाषा अत्यन्त विशद, भाव समुन्नत और सिद्धान्त विकसित है तो दो बातों में से एक अवश्य ही ठीक होगी। या तो वेद सूर्य के समान ईश्वरकृत होंगे, या जब मानव-जाति की अपेक्षा प्रारम्भिक और अपूर्ण तथा अविकसित होना चाहिए। आज जो कुछ मैं लिख रहा हूं, वह विकास की एक नियत अवस्था में प्राप्त हो चुका है। साठ वर्ष पूर्व जब मैं पाठशाला में भरती ही हुआ था और लकड़ी की पट्टी पर लिखता था, उस समय के मेरे अक्षरों और आजकल के अक्षरों में भेद है। परन्तु यदि मेरी कोई पुरानी कापी मिल जाय और उसमें अत्यन्त सुन्दर अक्षर मिलें तो यही कहना पड़ेगा कि वह अक्षर मेरे नहीं अपितु किसी अधिक विकसित पुरुष के हैं।

इस प्रकार वेदों के विषय में तीन सम्भावनाएं हो सकती हैं-

(१) वेद अत्यन्त अपूर्ण और प्रारम्भिक हैं। इसीलिए पिछली शताब्दी के विद्वान् वेदों को गड़रियों के गीत या बच्चों की बिलबिलाहट बताया करते थे।

(२) वेद अत्यन्त विशद, विकसित और ऐसी अवस्था के हैं जब मनुष्य-जाति पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुकी थी। उस दशा में उनका अविकसित या अर्द्ध-विकसित साहित्य मिलना चाहिए, जो वेदों से पूर्व था, जिससे पता चल जाए कि वेदों तक पहुंचने से पूर्व मानव-जाति के साहित्य को किस-किस अवस्था में होकर गुजरना पड़ा। इसके साथ ही यह भी सिद्ध होना चाहिए कि वैदिक काल के पश्चात् मानवी भाषा और भावों ने इतनी उन्नति और की।

(३) यह कि वेद हैं तो प्राचीनतम, परन्तु इतने विकसित और पूर्ण हैं कि इनको मानवी कृति कहना ही असंभव है।

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज की तीसरी पोजीशन है और स्वामी दयानन्द से पूर्व के ऋषि-मुनि तथा मध्यकालीन आचार्यों का भी यही मत रहा है। मनुष्य ने उन्नति की है और उनके विभागों में, परन्तु उसकी कृति वेदों से अब भी उतनी पीछे है जितनी बिजली के लैम्प सूर्य से पीछे हैं। सूर्य अत्यन्त प्राचीन और अत्यन्त पूर्ण है। आरम्भिक इसलिए है कि सृष्टि के आरम्भ में हुआ। पूर्ण इसलिए है कि मनुष्य ने बनाया नहीं। सूर्य की उत्पत्ति के समय मनुष्य का बाल्यकाल अवश्य था। उसका अनुभव भी शून्य के समान था। परन्तु जो चीज उसकी बनाई न थी उसमें पूर्णता थी। विद्यार्थी की कापी पर अध्यापक उसके अनुकरण के लिए जो पहली सुन्दर पंक्ति लिख देता है वह प्रारंभिक होते हुए भी पूर्ण होती है, क्योंकि प्रारंभिक तो बच्चों की अपेक्षा से है। जिस गुरु ने लिखा है उसका बाल्यकाल नहीं, वह तो पहले से विकसित हो चुका है।

ऋग्वेद ने इस विषय में एक बात लिखी है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेद में लिखा है-

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्"। (ऋग्वेद १०/१९०/३)

यह छोटा-सा मन्त्र है और पूर्ण परिचित, परन्तु इसके महत्त्व पर लोगों ने विचार नहीं किया। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा ने इस कल्प में सूर्य-चन्द्र आदि को उसी प्रकार बनाया जैसे पूर्वकल्पों में 'यथापूर्व'। यह विशेष वाक्य है। इसके अर्थ बड़े विस्तृत हैं। इससे पता चलता है कि सृष्टि को बनानेवाली कोई नई अनुभव अप्राप्त प्रारंभिक शक्ति नहीं है। यह शक्ति पूर्ण है। अत्यन्त पुरानी है। सृष्टि के विषय में यह धारणा भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों तक जाती है। यह अपूर्ण और अविकसित या अर्द्धविकसित भावना नहीं हो सकती। वेदों के 'धाता' और 'यथा-पूर्व' पर विचार कीजिए। मनुष्य कर्तृता हो सकता है, परन्तु 'धाता' नहीं। 'धाता' और 'विधाता' का परस्पर सम्बन्ध है। वास्तविक विधाता तो धाता ही है जिसने न केवल सृष्टि को बनाता है अपितु धारण भी करता है।

इस विषय में वेदों के पश्चात् आनेवाले साहित्य ने क्या उन्नति की? यह देखना है। वेदों के पश्चात् का साहित्य दो भागों में बंटा है- एक वैदिक और दूसरा अवैदिक। वैदिक साहित्य तो वेदों की ही नकल है।

श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्।

वेद अपौरुषेय और समस्त ऋषि-कृत साहित्य समझा जाता है।

दूसरा अवैदिक वेदों के विरोध अथवा उपेक्षा में बनाया गया है। कुर्आन, बाइबल आदि में उपर्युक्त मंत्र के भाव से विशद क्या कोई भाव मिलता है? यदि मिलता है और उत्तरकालीन पुस्तकों में इतना ही विशद है तो इसको अनुकरण कहेंगे। यदि कम मिले तो कहेंगे कि साहित्य में अवनति आ गई, और यदि इससे बढ़कर कोई विचार है तो कौन-से ऋषि अपनी अन्तरात्मा में सृष्टि के आरम्भकाल में इस भाव को 'देख' सके- उनकी चक्षु कितनी विचित्र और विकसित रही होगी!

अब थोड़ा-सा भाषा-सम्बन्धी बातों पर विचार कीजिए। ध्वनि, शब्द, वाक्य, छन्द इत्यादि अनेक बातें है जिनसे वेदों की विशदता का परिज्ञान हो सकता है। केवल भाषामात्र एक बात नहीं, अपितु कई बातें हैं, संज्ञाओं के रूप में उनका रूपान्तर, क्रियाओं के रूपान्तर इत्यादि। विद्वानों का कहना है कि संस्कृत भाषा संसार की सब भाषाओं में विशदतम है। 'धाता' 'अकल्पयत्' इन दो शब्दों में निहित भावों पर विचार कीजिए। सृष्टि का विधाता मेज के बनानेवाले बढ़ई के समान नहीं। बढ़ई विधाता है धाता नहीं, विधाता भी क्यों कहो? बढ़ई जिस प्रकार मेज-विधाता है उसमें वैसा विधातृत्व अथवा धातृत्व कहाँ? वह तो बाहरी वस्तु को घड़ देता है। उसका और लकड़ी का बाह्य संपर्क है। कल्पना कीजिए उस मस्तिष्क की विशदता का जिसने सृष्टि-कर्तृता के लिए विधाता या धाता शब्द का उपयोग किया।

अच्छा, ऋग्वेद के एक और छोटे-से वाक्य को लीजिए-

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं" (ऋग्वेद १/१६४/४६)

समस्त सृष्टि के 'एकत्व' और उसके रचयिता के 'एकत्व' का भाव क्या बच्चों की अनुभवशून्य अवस्था का भाव है? क्या आज तक दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, धर्म-संस्थापकों आदि ने इससे विशद भाव का आविर्भाव किया? ईश्वर का एकत्व और उसके गुणों और उन गुणों के सूचक शब्दों का बहुत्व कितनी बड़ी बात है! "विप्रा बहुधा वदन्ति" की मनोवैज्ञानिक महत्ता पर विचार कीजिए। मानवी मस्तिष्क की प्रगतियों की भिन्नता को देखिए- "विचित्र-रूपाः खलु चित्तवृत्तयः"। संसार की वस्तुओं को देखते समय मनुष्य भी भावनाओं में कितनी विभिन्नता

क्रमशः.....७ पर

रामायणकालीन वैदिक संस्कृति

-अज्ञात

सन्ध्या और अग्निहोत्रः

बाल्मीकि रामायण से विदित होता है कि उस काल में आर्यों की उपासना सन्ध्या के रुप में होती थी।जप, प्राणायाम तथा, अग्निहोत्र के भी विपुल उल्लेख मिलते हैं। पौराणिक मूर्तिपूजा, व्रत, तीर्थ, नामस्मरण या कीर्तन रुप में धार्मिक कृत्य का वर्णन मूलतः नहीं है। क्षणिक उल्लेख जो इस सम्बन्ध में मिलते भी हैं वे अप्रासङ्गिक प्रक्षेप या मूलकथा से असम्बद्ध हैं।

१- ईशस्तुति, सन्ध्या, गायत्री जप, अग्निहोत्र और प्राणायाम के कुछ प्रसंग द्रष्टव्य हैं—

कौशल्या-सुप्रजा-राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल ! कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ।।—(बालकाण्ड ३३/२)

भावार्थ—महर्षि विश्वामित्र ने कहा—हे कौशल्या नन्दन राम ! प्रातः कालीन सन्ध्या का समय हो रहा है। हे नरशार्दूल ! उठो और नैत्यिक कर्तव्य-सन्ध्या और देवयज्ञ करो।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ।।—(बाल०का० २३/३)

भावार्थ—ऋषि विश्वामित्र के इस उदार वचनों को सुनकर दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) उठे, स्नान आदि से निवृत्त होकर परम जप (गायत्री का जाप) किया।

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च ।।३१।।
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्।। ३२ ।।—(बाल० का० २९वां सर्ग)

भावार्थ—राम, लक्ष्मण दोनों राजकुमार सावधानी के साथ रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल उठे और सन्ध्योपासना की। अत्यन्त पवित्र होकर परम जप गायत्री का नियमपूर्वक उन्होंने जप किया और उसके बाद अग्निहोत्र करके बैठे हुए गुरु विश्वामित्र को अभिवादन किया।

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्यामुपासत ।—(युद्धकाण्ड ५/२३)

भावार्थ—सीता के शोक से दुःखी राम ने लक्ष्मण द्वारा धैर्य बंधाने पर (आश्वासित) सन्ध्योपासना की।

सीता को खोजते हुए हनुमान् अशोकवाटिका में एक पवित्र सुन्दर नदी को देखकर सोचते हैं—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ।।—(सुन्दरकाण्ड १४/४९)

भावार्थ—यदि सीता जीवित होंगी तो प्रातःकालीन सन्ध्या के लिए इस सुन्दर जलवाली नदी के तट पर, सन्ध्या के योग्य इस स्थल पर अवश्य आयेंगी।

तस्मिन् कालेपि कौशल्या तस्थावामीलितेक्षणा ।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ।।—(अयो० ४/३२-३३)

भावार्थ—श्रीराम जब कौशल्या जी के भवन में गये उस समय कौशल्या नेत्र बन्द किये ध्यान लगाए बैठी थीं और प्राणायाम के द्वारा परमपुरुष परमात्मा का ध्यान कर रही थीं।

सा क्षौमवसना ह्रष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ।।—(अयो० २०/१५)

भावार्थ—रेशमी वस्त्र पहनकर राममाता कौशल्या प्रसन्नता के साथ निरन्तर व्रतपरायण होकर मङ्गल कृत्य पूर्ण करने के पश्चात् मन्त्रोचारणपूर्वक उस समय अग्नि में आहुति दे रही थीं।

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागतम् ।।—(अयो० ६/१)

भावार्थ—पुरोहित के चले जाने पर श्रीराम ने स्नान करके नियत मन से विशाललोचना पत्नि सीता सहित परमात्मा की उपासना की।

२- वेद वेदाङ्ग का अध्ययनः

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वदे च निष्ठितः।।—(बाल० १/१४)

भावार्थ—राम स्वधर्म और स्वजनों के पालक वेद-वेदाङ्गों के तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेद में प्रवीण थे।

सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित् ।।—(अयो० १/२०)

भावार्थ—श्रीराम सर्वविद्या-व्रतस्नातक तथा छहों अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे।

अस्मिन् च चलते धर्मो यो धर्म नातिवर्तते।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेदविदां वरः।।—(युद्धकाण्ड २८/१९)

भावार्थ—धर्म श्रीराम से कभी अलग नहीं होता। श्रीराम धर्म का कभी उल्लंघन नहीं करते। वे ब्रह्मास्त्र और वेद दोनों के ज्ञाता थे तथा वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ थे।

रावण भी वेदविद्याव्रत स्नातक थाः
वेदविद्यावर्तस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद् वधं वीर ! मन्यसे राक्षसेश्वर।।—(युद्धकाण्ड ९२/६४)

भावार्थ—सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् रावण के मन्त्री ने रावण से कहा—हे रावण ! तू वेदविद्याव्रतस्नातक तथा स्वकर्मपरायण होकर स्त्रीवध (सीता का वध) क्यों करना चाहता है?

अतः वेदवेत्ता होने पर भी अपनी आचारहीनता से रावण अधर्मी और पापी माना गया।

कहा भी गया है—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।
—(मनुस्मृति ६६३)

आचार से हीन दुराचारी व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

●●●

प्रतिवादी-भयंकर व्याख्यान-

वाचस्पति श्री पं० गणपति शर्मा-एक संस्मरण

-पं.नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ

(पं. गणपति शर्मा स्मृति दिवस के अवसर पर प्रकाशित)

स्व० श्री पण्डित गणपति शर्मा आर्यजगत् में अवतीर्ण शास्त्रार्थ कला के अतुल्य महारथी और व्याख्यान-वाचस्पति जाने जाते हैं। शास्त्रार्थ में आपके शास्त्रीय प्रणिनाद से विपक्षी घुटने टेक देते थे। आपने वैदिक धर्म के ध्वज की गरिमा को अपनी प्रौढ़ विद्वत्ता से जनमानस के हृदय में प्रतिष्ठित कर दिया था। दुबले-पतले होने के बावजूद ओजस्विनी भाषा में लगभग ५ घण्टे धाराप्रवाह व्याख्यान देना आपकी अद्भुत कला थी। आपका जन्म राजस्थान के चूरू नगर में सं० १९३० वि. में पण्डित भानीरामजी वैद्य नामक ब्राह्मण के घर हुआ था। २२ वर्ष की अल्पायु में ही आप काव्य और व्याकरण दर्शन साहित्य आदि विविध विषयों के तलस्पर्शी प्रगल्भ विद्वान् बन गये। महर्षि दयानन्द के समकालीन वैदिक धर्म के प्रचारक रामगढ़ शेखावटी निवासी ब्र.पं. कालूराम जी योगी ने आपको वैदिक धर्म में दीक्षित किया था। कतिपय वर्षों तक आपने काशी तथा कानपुर में रहकर अध्ययन किया था। आपकी विद्वता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तार्किकशिरोमणि स्व० स्वामी दर्शनानन्द जी आपका व्याख्यान बड़ी उत्सुकता और तन्मयता से सुना करते थे। आपका २७ जून १९१२ को ३९ वर्ष की अल्पावस्था में स्वर्गवास हो गया। आपकी विद्वत्ता पर दृष्टि डालते हुए आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व. श्री पं. नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ का लिखा यह संस्मरण 'परोपकारी' के जून १९६१ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

स्व. श्री पं. गणपति शर्मा का और हमारा विशेष परिचय महाविद्यालय ज्वालापुर में सन् १९०८ के महाविद्यालय के महोत्सव के अवसर पर हुआ। पहिले हम उनका केवल नाम ही सुनते थे कि वह विद्वान् हैं, अनुपम व्याख्याता हैं, शास्त्रार्थ महारथी हैं, इत्यादि।

वे महाविद्यालय के प्रत्येक महोत्सव पर आते थे। पहिले उनका मेल महात्मा मुन्शीराम से था जब कि उनके साथ काम करते रहे। फिर उनका मुख्य क्षेत्र सामान्यतः आर्यसमाज रहा, और महाविद्यालय विशेष क्षेत्र बना। स्व. मास्टर आत्मारावजी (बड़ौदा) तथा गणपति शर्मा के व्याख्यान सुनने के लिए सहस्रों नर-नारी महाविद्यालय के महोत्सव पर आते थे। उस समय कांगड़ी गुरुकुल गंगा पार कांगड़ी में था, और महाविद्यालय ज्वालापुर में था। दोनों के महोत्सव एक ही तारीखों में होते थे। लोग कांगड़ी का उत्सव १-२ दिन देखकर पिछले दो दिन महाविद्यालय में आते थे। बड़ी भीड़ लगती रही।

व्याख्यान वाचस्पति

दीखने को तो गणपति शर्मा सांवले रंग के थे, दुबले-पतले थे। उनकी आकृति-विकृति को देखकर उनमें श्रद्धा ही नहीं जमती थी कि वे व्याख्यान वाचस्पति होंगे। पर जब वे व्याख्यान देने को खड़े हो जाते थे, तब न जाने उनमें कहां से बल आ जाता था कि दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घण्टे बोलते थे। सहारनपुर के जलसे में खड़े हुए कि- 'मैं आज केवल दो प्रश्नों पर बोलना चाहता हूं।' ढाई घण्टे इधर उधर की बातें कहते रहे, पर उन दो प्रश्नों का नम्बर ही नहीं आने पाया।

महाविद्यालय के महोत्सव पर ''वेद अपौरुषेय है'' इस विषय पर दस सहस्र की उपस्थिति में ऐसा अपूर्व व्याख्यान दिया कि पचास अंग्रेजी पढ़े हुए विद्वानों की वेदसम्बन्धी शंकाएं दूर हो गईं। वे कहने लगे- ऐसा अपूर्व व्याख्यान हमने नहीं सुना। उस व्याख्यान की एक बात मुझे स्मरण है। वह यह कि-

देखो, वेद में 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' यह मन्त्र आता है। उसमें गणपति शब्द को देखकर कोई यह कहेगा क्या, कोई यह कह सकता है क्या, कि वेद मेरे पीछे के बने हुए हैं? मैं वेदों से पहिले का हूं? इस पर श्रोतृवृन्द में बड़ा उल्लास और हर्ष रहा। उनके व्याख्यान शास्त्रीय ढंग के होने पर भी सरल (आम-फहम) होते थे। हर कोई समझ सकता था। उनके व्याख्यान विनोदप्रचुर होते थे। उनके व्याख्यान में लोग उकताते नहीं थे।

शास्त्रार्थ महारथी

महाविद्यालय के महोत्सव पर साक्षात् स्वद्र स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती से ''वृक्षों में जीव है कि नहीं'' इस विषय पर बड़ा अद्भुत ऐतिहासिक शास्त्रार्थ रहा। जब गणपतिजी की बातें सुनते, तो श्रोतृवृन्द यह समझ जाता था कि वृक्षों में जीव अवश्य है। जब स्वामीजी के उत्तर सुनते थे, तो श्रोतृवर्ग स्वामी के पक्ष का हो जाता था।

काश्मीर का शास्त्रार्थ

एकबार जब गणपति शर्मा काश्मीर में थे, उसी अवसर पर पादरी जानसन वहां पहुंचा। और उसने काश्मीरी पण्डितों को वेदान्त विषय पर शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। जानसन विद्वान् पादरी था। संस्कृत का पण्डित था। संस्कृत धाराप्रवाह बोलता था। उसने काशी, कुम्भघोण, कांची (दक्षिण की काशी) इत्यादि पचासों स्थानों में पण्डितों को ललकारा था। कुम्भघोण के पण्डितों ने जानसन को तीन-तीन अर्थों की संस्कृत बोलकर परास्त किया। वहां तो जानसन ने पण्डितों को हाथ जोड़कर उनसे पीछा छुड़ाया। शेष जहां-जहां गया, पण्डितों को हैरान ही करता रहा।

काश्मीरी पण्डितों को ललकारा, जब कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुआ, तब महाराजा प्रतापसिंह, जो स्वयं सभाध्यक्ष थे, आश्चर्य में पड़ गये कि क्या काश्मीर की नाक कटेगी? इतने में किसी ने महाराजा को सुझाया कि आर्यसमाज में पण्डित गणपति शर्मा ठहरे हुए हैं, उनको बुला लीजिए। वह जॉनसन की खबर लेंगे।

किसी सनातनी पण्डित ने कहा कि-

''महाराज! वे तो आर्यसमाजी पण्डित हैं।''

महाराजा प्रतापसिंह कट्टर सनातनी होते हुए भी बोले- क्या हर्ज है, यदि गणपति शर्मा आर्यसमाजी है। वह जानसन को तो ठीक कर देगा?

सनातनी पण्डित- महाराज! वैसे तो गणपति शर्मा तगड़े पण्डित, अद्भुत व्याख्याता, और शास्त्रार्थ-महारथी हैं।

महाराजा प्रतापसिंह- अरे! फिर तो उनको लाओ जल्दी बुलाकर।

महाराज का सन्देश गणपति को मिला। गणपति शर्मा तुरन्त उठे, और महाराज को भेंट करने के लिए गीता का छोटा गुटका जेब में रखा, और चल दिये। सभा में आकर गीता का गुटका और कुछ पुष्प महाराज के अपर्ण किये, और विनम्र होकर बोले- ''महाराज! क्या आज्ञा है?''

महाराज- अरे! देखते नहीं कि वह जानसन खड़ा है। इसको परास्त करो।

गणपति- अच्छा, जो महाराजा की आज्ञा।

एक तरफ जानसन, दूसरी ओर गणपति शर्मा। हजारों श्रोता विस्मययुक्त थे कि देखें क्या होता है? गणपति शर्मा ने महाराज से कहा कि वह प्रश्न करें हम उत्तर देंगे। महाराज ने जानसन से कहा शुरू कीजिए, हमारा पण्डित आ गया है।

अब प्रश्नोत्तर होने लगे

जॉनसन- हम आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं।

गणपति शर्मा- पहिले यह बतलाइए कि शास्त्रार्थ शब्द के क्या अर्थ हैं? क्या शास्त्र से मतलब आपका छः शास्त्रों से है? और क्या आपको यह ज्ञात है कि अर्थ शब्द भी अनेकार्थ वाचक हैं? अर्थ अर्थात् धन, अर्थ अर्थात् प्रयोजन, अर्थ अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म (वैशेषिक दर्शन के अनुसार)। शास्त्र भी केवल छः नहीं हैं- धर्म शास्त्र है, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र है। आप जरा समझाइये कि आप किस शास्त्र का अर्थ करने आये हैं? जब 'शास्त्रार्थ' शब्द का अर्थ समझायेंगे, तब हम उत्तर देंगे।

जॉनसन (गड़बड़ाये हुए बोले)- हम इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

महाराज (हंसकर, सिर हिलाते हुये)- अब काहे को तुमको उत्तर आयेगा?

गणपति शर्मा- महाराज! ज,नसन उत्तर नहीं दे रहा है।

महाराज- जॉनसन आया तो था बड़े घमण्ड के साथ। आपके पहिले ही प्रश्न में उसका सिर नीचे हुआ। जानसन उत्तर नहीं देता, वह हार गया। जाये अपने घर। हमारा पण्डित विजयी हो गया।

सभा उठ गयी। सर्वत्र गणपति शर्मा का जय-जयकार होने लगा। महाराज ने गणपति शर्मा को बुलाकर पास बैठाया, उसकी पीठ थपथपायी, और प्रेम से पूछा- कहो गणपति शर्मा! तुम्हारे जैसा विद्वान् आर्यसमाजी कैसे हो गया? क्या सचमुच तुम आर्यसमाजी हो?

(शायद महाराज ने सोचा हो कि मेरे पूछने से गणपति शर्मा यह कह देंगे कि मैं आर्यसमाजी नहीं हूं।)

गणपति शर्मा- हां महाराज! मैं तो हूं आर्य समाजी।

महाराज- बस, यही खराबी है।

क्रमशः.....६ पर

वेद में योगतत्त्व

-परीक्षित मंडल प्रेमी

विद्यामार्तण्ड सर्वज्ञानमय ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेदस्वतः प्रमाण है। धर्म दर्शन अध्यात्म, संस्कृति, सभ्यता और भाषा की बुनियाद में भारत ने जो शिला रखी है. यह वेद ही हैं। इसमें दिव्यज्योति से युक्त महर्षियों द्वारा परिलक्षित सृष्टि के नियम और उसकी व्यवस्था का प्रकार समन्वित है। इसकी युग-युगान्तर पर्यन्त मानवों के लाभार्थ वैदिक संस्कृत भाषा में अभिव्यक्त की गई है। यह दिव्यज्ञान हमें मौखिक परंपरा द्वारा प्राप्त हुआ है और इसकी व्यवस्था इतनी बारीकी और सुन्दरता से की गई है कि इसमें काट-छाँट एवं प्रक्षेपण की गुंजाईश का कहीं कोई चिन्ह नहीं है। इसमें संप्रदायवाद का कलुष नहीं जातिवाद कर उन्माद नहीं वितण्डावाद का तांड़य नर्तन नहीं और न संकीर्णतावाद का छल-दभ तथा पाखण्ड ही है। विश्वमानव-बोध तथा एकात्ममानववाद के महार्णव में सकीर्णता की तरंगों का महत्त्व नहीं होता। इसमें दिव्य प्रेरणा की अमद ज्योति है। ऋत प्रवीत गति का कलनिनाद है। समन्वय संदेश की दिशा है। यह भविष्य की राह प्रस्तुत करने के लिए दिव्यता भव्यता और पवित्रता का आलोक स्तम्भ है, जो चरैवेति चरैवेति की गति का वरदान है। यह निर्विवाद, निर्भ्रान्त और सुविचारित सुरथ दिशा का संकेत देता है। इसमें वैश्विक मानव कल्याण का शीतल अमृत छलकता रहता है। इसमें सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकाश के सनातन सिद्धान्तों तथा स्वस्तिक संस्कारों का व्यापक एवं विशद चित्र कलापूर्ण एवं मनोहारी शैली में अभिव्यक्त हुआ है। यह मनुष्य को मनुष्य से और उपस्थित वर्तमान को अनागत काल-खण्डों से जोड़ता है। इसकी मनोहारिणी एवं मृदु गम्भीर ऋचाएँ अपनी विविधता, विलक्षणता और सूक्ष्मता के कारण विश्व की अधिकांश संमृद्ध भाषाओं के आध्यात्मिक तथा धार्मिक साहित्य के बीच अपनी साहित्यिक सांस्कृतिक, दार्शनिक, भाषिक एवं ऐतिहासिक महार्घ महत्ता के साथ अंकित है। यह अभिव्यक्ति की चिन्मय चेतना तथा चारुता का सर्वतोभद्र विकास करता है। इसके अध्ययन अनुशीलन तथा चिन्तन-अनुचिन्तन से जीवन और जगत की मुख्य जीवनधारा में संवेदना, सामरस्य और सौमनस्य का सर्वतोन्मुखी विकास होता है तथा दुरात्मा का दंभ खण्डित होता है एवं संकीर्णता की दीवारें टूटती हैं।

वेदकाल से भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म और साधना के क्षेममय क्षितिज में योग का प्रमुख स्थान है। इसे वैदिकधर्म एवं अध्यात्म-साधना का एक अनिवार्य तत्त्व माना गया है। भारतीय आर्य सनातन धर्म तथा साधना में वेदांत के समान प्रतिष्ठा यदि किसी अन्य अध्यात्म विद्या को मिली है तो वह निश्चित रूप से योग ही है। ज्ञाता एवं ज्ञेय अथवा साधक तथा साध्य का तादात्म्य योग के अभाव में हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि विश्व के धर्म, दर्शन तथा साधनाओं में इसको महार्घ महत्त्व को मुहुर्मुहुः स्वीकार किया गया है और धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक चर्चा में किसी-न-किसी रूप में योग की विशद व्याप्ति पाई जाती है। वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार की विचारधाराओं, साधनाओं से प्रेरित प्रभावित शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि संप्रदायों ने भी योग साधना के विभिन्न तत्वों को विविध रूप में अपनाया है। तात्पर्य यह है कि भारतीय धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म चेतना आदिकाल से योग के आलोक स्तंभ से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पथ-निर्देश प्राप्त करती रही और अपने सुदीर्घ कालीन इतिहास वो किसी भी युग में उसकी उपेक्षा न कर सकी। यह किसी देश काल, जाति, समाज, साधना, धर्म अथवा संस्कृति तक सीमित नहीं है। यह योग के सर्वातिशायी व्यापक प्रभाव का ही परिणाम है कि त्रिकाण्ड अध्यात्म-साधना के सभी अंगों में इसे अपनाकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई और कर्मयोग, ज्ञानयोग, तथा भक्तियोग के विमल प्रवाह से संपूर्ण भारतीय संस्कृति और साधना भूमि आप्लावित हो गई। वेद परवर्ती वैदिक वाङ्मय एवं साधना सभी योग युक्त हो गए। गीता का कर्म-कौशल योग बन गया। योग कर्मेषु कौशलम् ज्ञान भी पीछे नहीं रहा-

"सांख्ययोगौ पृथग्वालाः प्रवदन्ति न पण्डिता।।" और अन्ततः भक्ति भी योग में दीक्षित हो गई। "मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।।" अध्यात्म साधना के तीनों प्रस्थान- भावना प्रधान भक्ति, प्रक्रिया प्रधान कर्म तथा दर्शन प्रधान ज्ञान, सभी योग में मिलकर एकाकार हो गए। भावना, चिन्तन और क्रिया-साधना के इन तीनों आयामों को योग ने समेट लिया। दैहिक, मनोदैहिक तथा अध्यात्म तीनों क्षेत्र योग संचार के क्षेत्र बन गए। यही वह प्राचीनतम परा भौतिक विज्ञान है। आत्मानुशासन का दिव्य स्पंदन है. जिसे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोश को पाकर अनावृत्तकर आनन्दमयकोश में प्रवेशकर महर्षियों, योगियों और संबुद्ध संतों ने परमतत्व को संसिद्ध किया है। परमतत्व के साथ अपने को एकाकार करके अपने सनातन स्व को संसिद्ध किया है।

योग शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। योग जोड़ने का काम करता है। महावैयाकरणाचार्य महर्षि पाणिनी के धातु पाठ में युजिर योगे के अनुसार योग जोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। इसके परे पाणिनी के पाठ में योग शब्द के निष्पादक को और धातु उपलब्ध हैं। युज्-समाधौ तथा युर्ज संयमने। आचार्य भट्टोजि दीक्षित ने समाधि का अर्थ चित्तवृत्ति को निरोध किया है। समाधिश्चित वृत्ति निरोधः। महर्षि पतंजलि ने योग का अर्थ चित्तवृत्ति निरोध किया है- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अतः समाधि और योग पर्यायवाची शब्द हैं। महर्षि वेद व्यास ने भी पतंजलि के सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है-योग समाधि। लिंग पुराण, कूर्मपुराण, अग्नि पुराण में चित्तवृत्ति की परिकल्पना स्वीकृत है। इसी प्रकार द सर्पेट पावर में माया तंत्र के अनुसार आत्मा और परमात्मा का ऐक्य ही योग है शक्तिमत के अनुसार मनुष्य की चेतना और परमात्मा का ऐकाकार होना ही योग है। महर्षि याज्ञवल्क्य की दृष्टि में भी जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य योग है। इस प्रकार योग के द्वारा मुनष्य ऐक्य योग है। इसप्रकार योग के द्वारा मनुष्य की आध्यात्मिक सिद्धि अथवा उसके अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि योग से ही आत्मदर्शन, आत्म कल्याण की इहलौकिक और पारलौकिक सुख-सिद्धि- समृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

वेद में योग की गरिमा और यज्ञों की सिद्धि के लिए उसकी परमावश्यकता बतलाई गई है। इसी सिद्धान्त का ऋग्वेद संहिता १/१८/७ में स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो
विपश्चितश्चन स धीनां
योगमिन्वति।।

अर्थात् योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता है। यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि बड़े-बड़े ज्ञानी मनीषियों के भी श्रेष्ठकर्म-उत्तमकर्म उसकी कृपा के बिना कभी सफल नहीं होते। अपने शुभ कर्मों के प्रारम्भ में उसका आह्वान करते हैं। वह समस्त बुद्धियो, वृत्तियों. कर्मों और आचरणों को योग में लगाने पर अर्थात् एकाग्र चित्त ध्यानयोग करने पर मिलता है। पुनः ऋग्वेद १०/५/५ में योग की महिमा का व्याख्यान करते हुए कहा गया है-

सप्त स्वसूररुषीर्वावशानो विद्वान
मध्य उज्जभारा दृशे कम्।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा
इच्छन्वविमविदत्पूषणस्य।।

(मध्यः वावशानः विद्वान) मधु मोक्ष की कामना करने वाला विद्वान (सप्त) सात (आरुषी) बलशाली (स्व-सृः) अपने विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों को (क दृशे) आनन्दमय ईश्वर को अवलोकन के लिए साक्षात् करने के लिए (उत् जभार) ऊपर उठाता है अर्थात उनके विषयों से दूर करता है, इसके पश्चात् उनको वह विद्वान (पुराजा) इन्द्रियादि संबन्ध से पूर्व विद्यमान जीव (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तरिक्ष (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) में (येमे) नियमन करता है तब (पूषणस्य) सृष्टिकर्ता ईश्वर (वव्रि) वर को (इच्छन) चाहता हुआ (अविदत्) उसे प्राप्त कर लेता है।

जो आत्म कल्याण प्रभुदर्शन की अभिलाषा रखता है, उसे पहले अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना चाहिए। ऐसे मनुष्य पर परमप्रभु की असीमानुकम्पा होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नासिका, रसना, त्वचा) जो क्रमशः रूप, शब्द, गन्ध, रस स्पर्श का ज्ञान करती और कराती है तथा पाँच कर्मेन्द्रियों (गुदा, हाथ, उपस्थ पैर. वाणी) और अन्तःकरण (मन, बुद्धि. चित्त, अहंकार) से परे साधक सतत ध्यानाभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार ब्रहारन्ध्र में करते हैं और आनंद प्राप्त करते हैं।

जो भी हो भारतीय संस्कृति और साधना में योग तत्त्व प्राणरूप से प्रतिष्ठित है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म तथा लौकिक की अपेक्षा पारलौकिक को भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन में सदैव प्रधानता मिली है। आध्यात्मिक भावना की प्रधानता के कारण हमारे यहां जीवों के परमकल्याणार्थ अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रधानता दी गई है। अतः इसकी प्राप्ति के लिए योग का मार्ग सबसे उत्तम मार्ग माना गया है। इस संबन्ध में अष्टांग योग ही एकमात्र विद्या है। जिसके नियमित अभ्यास से हर व्यक्ति अपनी जीवन नैया को सुचारु रूप से शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर इस भवसागर से पार ले जा सकता है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि उदात्त और बहुआयामी योग-ध्यान की साधना स्वयं हिमालय की भव्य भास्वर ऊँचाइयों से निःसृत एक अमल-धवल निर्मल निर्झर की तरह है। जो जातिवाद, संप्रदायवाद, की कथित रूढ़ियों एवं कुरीतियों की रूग्न परंपरा को विखण्डित करता है और कास्मिक केमिस्ट्री अर्थात ब्रह्म रासायण की और आरोहण करने का अमृत पिलाता है, जिसकी सप्राण सघन साधना मानव समाज से गहरा सरोकार रखती है और गहमता की संवेदना, नैतिकता तथा मर्यादा के नए आयामों को उजागर करती है. जो मानव और मानव के बीच की आनुवांशिकता एवं भौगोलिक सीमाओं को नकारते हुए इसकी सार्वभौमिकता को जागृत करती है।

मो० ९१६२२०८००५

काशी आर्य समाज बुलानाला वाराणसी में स्वागत समारोह

दिनांक३० जून २०२४ आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ उप मंत्री श्री ज्ञानेंद्र मलिक जी का काशी आर्य समाज बुलानाला वाराणसी में भव्य स्वागत संस्था के प्रधान श्री रामाशंकर आर्य व कोषाध्यक्ष श्री राहुल यादव एडवोकेट सर्वश्री आचार्य पंडित रामदेव शास्त्री अंतरंग सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा (उत्तर प्रदेश) अजीत कुमार आर्य, वैभव कुमार, आर्य अमरजीत, संदीप पांडेय, अनिल कुमार एडवोकेट, कल्लू कुमार आर्य, मनीष कुमार, अजय आर्य,अमोल आर्य, ओम आर्य, आदि आर्य, अंजली वर्मा, अंश आर्य, हर्षित वर्मा आशीष कुमार गोंड आदि ने माल्यार्पण कर स्वागत किया धन्यवाद ज्ञापन मंत्री श्रीमती सरस्वती देवी ने किया।

पृष्ठ....४ का शेष

तुम जैसा पण्डित सनातनियों में होना चाहिये था। आज आपने काश्मीर की नाक बचा दी।

जब से कश्मीर की विजय हुई, तब से गणपति शर्मा का नाम सर्वत्र भारत में फैल गया। और आने लगे चहुं ओर से निमन्त्रण। वे जहां-जहां जाते श्रोतृवर्ग उमड़ पड़ता था।

हास्यप्रिय

समय पड़ने पर ईसाई मुसलमान जैनियों से खुद शास्त्रार्थ कर लेते थे। पौराणिकों से तो मुठभेड़ रहती थी। संस्कृत के पण्डित प्रायः शुष्क व्याख्याता होते हैं, पर पण्डितजी में विनोद की मात्रा प्रचुर थी। कोई छोटी-सी बात लेकर खड़े होते थे, और घण्टों बोलते थे। उनका रेवरेण्ड फ्रैंक (रुड़की) के साथ शास्त्रार्थ चिर-स्मरणीय रहेगा। वह तो उनको हाथ जोड़कर ही चला। इतना मधुर बोलते थे कि लोग उनके भाषणों में घण्टों बैठे रहते थे। जहां देखा कि लोग उकता रहे हैं, वहां गणपति शर्मा 'यही नहीं, और यह भी एक बात है' यह कह देते थे, तो उठते-उठते लोग भी बैठ जाते थे।

एक बार मैं और गणपति शर्माजी कहीं जा रहे थे। मार्ग में गाजियाबाद उतर पड़े।

गणपति शर्मा- शास्त्रीजी, यहीं उतर पड़ो न? देखो। अन्धेरा हो गया है, रात यहीं काटेंगे।

मैं- अच्छी बात है।

एक इक्का किया और चल दिये। मार्ग में एक मण्डी पड़ती थी। उसमें ऊपर की ओर स्व. बा. गोकुलचन्द्र वकील मन्त्री आर्यसमाज रहते थे। जब मण्डी के पास आये, मैंने कहा- मैं मन्त्रीजी को आपके आने की सूचना दे आता हूं। मेरे इतना कहते ही वे एकदम इक्के से उतर पड़े, और बोले- मैं तुम्हारे आने की सूचना मन्त्रीजी को दे आता हूं। आप इक्के को यहीं खड़ा रक्खें। मैं तो हैरान हो गया। पूछते-पूछते मन्त्रीजी के मकान पर पहुंचे पर अपनी धुन में पड़ोस के एक वकील के घर में घुस गये।

वकील (हैरान होकर)-आइये बैठिए।

गणपति शर्मा- भारतवर्ष के विख्यात, महापण्डित नरदेव शास्त्री आये हैं। मण्डी के बाहर इक्के में बैठे हैं।

वकील- हमने तो आज तक उनका नाम नहीं सुना।

गणपति शर्मा- आपने ऐसे बड़े पण्डित का नाम नहीं सुना? वे तो आपके यहां आये हैं।

वकील- मैं क्या करूँ? मैं तो उनको नहीं जानता। पण्डितजी उस वकील पर बहुत बिगड़े और उसको पचासों गालियां देते हुए वापस आये। बोले- यह आर्यसमाज का मन्त्री बड़ा दुष्ट है, उसने आपके नाम की परवाह ही नहीं की। चलो, समाज में आज मन्त्री की खबर लेंगे।

हम जब समाज में पहुंचे, तो शायद समाज की अन्तरंग हो रही थी। सब सभासद खड़े हो गये, स्वागत किया। जब सब बैठ गये, पण्डित गणपति शर्मा भिन्नाये हुए बोले- ''देखोजी! हम मन्त्रीजी के घर गये। उनको कहा- महापण्डित नरदेव आये हैं। फिर भी उसने परवाह नहीं की, और कहा कि- 'मैं क्या करूं, मैं नहीं जानता नरदेव कौन है?' यहां का मन्त्री बड़ा दुष्ट है। ऐसे को मन्त्री क्यों बनाया, जो अतिथि सत्कार नहीं जानता?''

जब यह बात सुनी, तब असली मन्त्री गोकुलचन्द्र जी बोले- 'मैं तो यहां हूं। आप गलती से पड़ोस के घर में घुस गये होंगे।' यह सुनकर पण्डित जी सटापटाए और बोले- ''तो फिर वह वकील, जिसके घर में हम गये थे, बड़ा दुष्ट है। हमको देखकर अपनी जगह से हिला तक नहीं। नरदेव शास्त्री से मिलने की बात तो दूर रही।''

उपस्थित सज्जनों में इस बात पर बड़ा कहकहा रहा। और वह हास्य विनोद का दृश्य देखते ही बनता था।

जिस दिन जिस समय पण्डितजी का व्याख्यान होता था, तब पण्डितजी के पास जाकर तीन चार बार जगाना पड़ता था अर्थात् कहना पड़ता था। तब वे धीरे-धीरे तैयार होते थे।

समझिए कि उनका व्याख्यान ४ बजे रखा गया है, तो एक व्यक्ति एक बजे जाकर कह आयेगा कि पण्डितजी आज आपका व्याख्यान सुनने के लिए बहुत लोग आये हैं।

पण्डितजी- अभी तो एक बजा है, थोड़ा सो लेवें।

दो ढाई बजे दूसरा आदमी गया। बोला- पण्डितजी आज आपके व्याख्यान में बड़ी भीड़ होगी।

पण्डितजी- अच्छा? चार बजे एक आदमी और गया- पण्डितजी आज जिधर देखो आदमी ही आदमी हैं।

पण्डितजी- अच्छा, अभी तो हमको शौच जाना है। अच्छा, लोटा भर लाओ। फिर वे शौच जायेंगे, आधे घण्टे में वे आयेंगे।

उनके शौच से लौटने तक एक और आदमी उनको बुलाने को तैयार रहे। पण्डितजी! आप चलिए। लोग दूर-दूर से आये हैं। आपका व्याख्यान सुनकर शाम की ६ बजे की गाड़ी से लौट जायेंगे।

पण्डितजी- अच्छा? क्या करें लोग सोने नहीं देते, शौच भी नहीं फिरने देते। चलो बाबा, चलो।

फिर प्लैटफार्म पर पहुंच कर सरस्वती का ऐसा प्रवाह बहाते कि लोग मन्त्रमुग्ध होकर २-२, ३-३ घण्टे बैठे रहते।

मैंने पण्डितजी से एक बार कहा- पण्डितजी! आप व्याख्यान के पहिले से ही क्यों नहीं तैयार होकर बैठ जाते? आपके लिए बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब बोले- नरदेव! तुम शास्त्री हो गये, पर तुम्हें अकल नहीं आई।

मैं- कैसे?

गणपति शर्मा- श्रोतृवृन्द में एक प्रकार की उत्सुकता न हो, तो व्याख्याता का व्याख्यान फीका पड़ जायगा। श्रोतृवृन्द उत्सुक हो, तो व्याख्याता को भी उत्साह आता है, और फिर व्याख्यान ठीक बनता है। समझ कोरे शास्त्री!

हमको परिचयात्मक दो शब्द भी नहीं कहने दिये। एकदम बोले- मैं गणपति शर्मा हूं, जिसके व्याख्यान को सुनने के लिए आप लोग कृपापूर्वक एकत्रित हुए हैं। आज मुझे केवल दो प्रश्नों का उत्तर देना है।

दो ढाई घण्टे तक धाराप्रवाह व्याख्यान हुआ, पर उन दो प्रश्नों का उसमें उत्तर नहीं था। पता नहीं प्रश्न कहां रल गये?

ऐसे थे हमारे चूरू प्रदेश के गणपति शर्मा। जब उनको क्रोध चढ़ता था तब मेरे जैसा सपेरा ही उनको संभाल सकता था।

शोक कि पण्डित जी जैसा संस्कृत तथा हिन्दी में धाराप्रवाह वक्ता, शास्त्रीय जटिल विषयों को भी सरल से सरल शब्दों में समझानेवाला अब नजर नहीं आता। उनके विनोदपूर्ण स्वभाव के, उनके क्रोध के दो-चार छोटे छोटे उदाहरण मैं और दे सकता हूं। इधर लेख बढ़ता जा रहा है। मैं भी थक सा गया हूं, इसलिये यहीं समाप्त कर रहा हूं। आखिर गणपति शर्मा जी के अन्य सहयोगियों और भक्तों को भी तो कुछ लिखना है। संस्मरणात्मक लेख में संक्षेप से ही काम लेना चाहिये।

कटक का शास्त्रार्थ

पण्डित जी के कटक का शास्त्रार्थ-विवरण भी उल्लेखनीय है जो कि पण्डितजी के मुख से हमने सुना। कटक सनातनी उद्भट विद्वानों का अखाड़ा था। जिस समय पं. गणपति शर्मा उड़ीसा में पहुंचे थे, पण्डित जी का स्वभाव विनोदी था। छोटे बड़े सबके साथ मिल जाते थे, और बड़ा आनन्द रहता था। गणपति शर्मा जी ने स्वयं एक बार हमसे कहा, और हमने विनोदात्मक ढंग से सुना था-

''एक बार हम उड़ीसा (उत्कल प्रदेश) में जा पहुंचे। न जाने किस तरह पण्डितों में यह खबर पहुंची कि गणपति शर्मा आया है। आर्यसमाजी है, नास्तिक है (मैं आर्यसमाजी तो था, पर नास्तिक कभी नहीं था)। असली बात यह है कि मैंने जगन्नाथपुरी कभी नहीं देखी थी। उसी के देखने के लिये मैं पुरी पहुंचा था। पुरी में जगन्नाथ मन्दिर को देखने के पश्चात् मैंने एक पण्डित से पूछा कि- सब जगह मन्दिरों में पत्थर की, पीतल की, कहीं-कहीं सोने की मूर्तियां होती हैं। यहां यह जगन्नाथ जी की मूर्ति काष्ठ की क्यों? इतने में वहां दस पांच पण्डित एकत्रित हुये। तब हमने जगन्नाथ पुरी में विशेषतः मन्दिर के अहाते में, जगन्नाथ सबके हाथ का भात खाते हैं, इस विषय में विनोदात्मक बात चलायी। तब तो बहुत आदमी इकट्ठे हुये। लोगों ने पूछा क्या है? किसी ने कहा- कोई नास्तिक आया है, किसी ने कहा- आर्यसमाजी दीखता है। बातों-बातों में मेरी चर्चा प्रारम्भ हुई, और पूरा भरी भर में बात फैल गई कि कोई आर्यसमाजी आया है। मैं जहां ठहरा था वहां बहुत से लोग पहुंचे, और कहने लगे-

लोग- क्या आप आर्यसमाजी पण्डित हैं?

मैं- आर्य-पण्डित हूं।

लोग- आर्य-पण्डित कैसे होते हैं?

मैं- जैसा मैं हूं।

लोग- पण्डित के साथ आर्य शब्द अच्छा नहीं लगता।

मैं- क्यों? इस देश का प्रत्येक निवासी आर्य है। यह आर्यावर्त देश है। इसमें रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति आर्य है।

लोग- क्या आर्यावर्त में रहनेवाले मुसलमान ईसाई भी आर्य हैं?

मैं- देश के कारण आर्य कहला सकते हैं। धर्म के कारण नहीं।

लोग- आप किस धर्म को मानते हैं?

मैं- वैदिक धर्म को मानता हूं।

लोग- क्या सत्य सनातन धर्म को नहीं मानते हो?

मैं- वैदिक धर्म ही तो सत्य सनातन धर्म है।

लोग- क्या मूर्ति को मानते हो?

मैं- क्यों नहीं? मूर्ति को मूर्ति मानता हूं।

लोग- जगन्नाथ जी को क्या मानते हो?

मैं- जो हैं, सो मानता हूं।

लोग- जगन्नाथ जी को परमेश्वर की मूर्ति नहीं मानते हो?

मैं- हम सब भगवान् की बनाई हुई मूर्तियां हैं।

लोग- श्राद्ध को मानते हो?

मैं- क्यों नहीं? माता-पिता, गुरु आदि का श्राद्ध करना ही चाहिये, अर्थात् इनकी सेवा श्रद्धा से करनी चाहिए।

लोग- और पितरों की?

मैं- पितरों का भी श्राद्ध करो। पितर अर्थात् बड़े-बड़े बुजुर्ग विद्वान् आदि।

लोग (आपस में)- देखो यह कैसी गोल-गोल बात करता है? हम इसकी अपने पण्डितों से क्यों न बात-चीत करायें? (पण्डितजी से) आप हमारे पण्डितों से बात करेंगे?

मैं- क्यों नहीं?

लोग- कल हम आपको अपनी धर्मशाला में ले चलेंगे। वहां हमारे पण्डितों से मिलेंगे?

मैं- अच्छी बात है।

दूसरे दिन सायंकाल दो चार व्यक्ति आये, और मुझे ले गये। वहां देखा तो बड़ा जमघट था। पण्डितों से नमस्कार आदि होने के पश्चात् एक प्रमुख पण्डित ने पूछा- ''क्या आप सनातनी पण्डित हैं? आप क्या मानते हैं? मूर्ति पूजा, श्राद्ध आदि मानते हैं या नहीं? जो लोग आपसे बात-चीत कर आये हैं, उनको सन्तोष नहीं हुआ। आप परमात्मा को मानते हैं कि नहीं?''

मैं- वाह! मैं परमात्मा को अवश्य मानता हूं।

पण्डित- साकार कि निराकार?

मैं (अब मुझे खुलकर बोलना पड़ा)- मैं तो परमात्मा को निराकार ही मानता हूं। देखो वेदों में 'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' इस मन्त्र में परमात्मा को 'अकायम्' लिखा है। एक मन्त्र में लिखा है- 'न तस्य प्रतिमा अस्ति'। सब से बड़ा प्रमाण वेद ही है। हम वेदों की बात को ही मानते हैं।

बस, शास्त्रार्थ छिड़ पड़ा। श्रोतृगण बहुत उत्साहित हुये, और अनेक चिल्ला उठे कि- 'ये नास्तिक हैं। इनके साथ शास्त्रार्थ कैसा?'

मैं- नास्तिक किसे कहते हैं?

पण्डित- नास्तिक वह जो वेदों का निन्दक हो। मनु लिखते हैं- 'नास्तिको वेदनिन्दकः।'

मैं- मैं तो वेदनिन्दक नहीं हूं, वेदों को स्वतः प्रमाण मानता हूं। अब स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण इस विषय पर चर्चा चली। फिर दूसरे दिन इसी बात पर चर्चा रही, तीसरे दिन मूर्ति-पूजा और श्राद्ध का विषय चला।

पण्डित गणपति शर्मा ने विनोदपूर्वक बताया कि सनातनी पण्डित ने मूर्ति-पूजा व श्राद्ध के विषय में कई जूतियां (मतलब युक्तियों से है) दीं। हमने भी इधर से कई जूतियां (युक्तियां) दीं। इस प्रकार घण्टे तक बराबर जूति-प्रजूति (युक्ति-प्रयुक्ति) होती रही। और अन्त में श्रोताओं के हुल्लड़ में शास्त्रार्थ बन्द करना पड़ा।

आपने कहा- उत्कल देश के पण्डित बड़े विद्वान् तथा सौम्य होते हैं। पण्डित जी कहते थे कि मैं पुरी में ८-१० दिन रहा। सर्वत्र मेरी चर्चा रहती रही। मैं जब रास्ते से निकलता था, तब लोग संकेत करते थे- 'देखो, यह नास्तिक जा रहा है'। इस प्रकार उत्कल देश में ५-६ स्थानों पर शास्त्रार्थ हुये। मैं अकेला था, और सौम्यरूप से उत्तर देता रहा। उग्र रूप पकड़ता, तो शायद झगड़ा बढ़ जाता, मैं सौम्य ही रहा।

विनोदी प्रकृति के

गणपति शर्मा स्वगृह में तथा मित्रमण्डली में बड़े विनोदपूर्वक व्यवहार करते थे।

इनके छोटे भाई का नाम श्यामलाल था। जब कुछ हंसने या विनोद के लिये नहीं रहता था, तो वे श्यामलाल से ही विनोद-वार्ता कर बैठते थे। श्यामलाल बेचारा बहुत सरल प्रकृति का व्यक्ति था।

पहिले यह भी पण्डित जी की बातों को वास्तविक समझता रहा।

गणपति शर्मा- श्यामलाल! जरा इधर आओ तो सही।

श्यामलाल- आया जी।

गणपति शर्मा- तेरे कपड़े मैले हो गये हैं।

श्यामलाल- हां जी।

गणपति शर्मा- फट भी गये हैं।

श्यामलाल- हां जी।

गणपति शर्मा- अब हम सोच रहे हैं कि तुम्हारे लिए इकट्ठे ही दस बारह कुरते सिलवा डालें, जिससे चिन्ता मिटे, और उनमें से कुछ मैले हो जायेंगे, कुछ धोबी के यहां धुलने जायेंगे। और ५-६ तुम्हारे पास भी रहेंगे, और तुम साफ सुथरे रहा करोगे। ठीक है न?

श्यामलाल खुश होकर चला जाता। फिर गणपति शर्मा श्यामलाल को बुलाते, और कहते- श्यामलाल तुम १०-१२ कुरते का क्या करोगे? कहीं खो दोगे। इसलिये अब सोचा है एक-दो कुरते ही अच्छे रहेंगे।

श्यामलाल- अच्छा जी।

गणपति शर्मा- श्यामलाल तुम्हारे पास घड़ी नहीं है। तुम कोई काम भी समय पर नहीं करते हो। तुम्हारे लिये एक अच्छी घड़ी मंगा देंगे। ठीक है न?

श्यामलाल (मन में सोचता हुआ कि १०-१२ कुरते तो बन गये, अब घड़ी मिलेगी) 'अच्छा जी घड़ी मिल जाय, तो अच्छा रहेगा'। ऐसा कहकर चला जाता है। थोड़ी देर में श्यामलाल को फिर बुलाते हैं और मुस्कराकर कहते हैं-

गणपति शर्मा- श्यामलाल!

श्यामलाल- हां जी।

गणपति शर्मा- तुम्हारे जाने के पश्चात् मैंने सोचा कि मैं श्यामलाल के लिये घड़ी तो ला दूं, पर उसके हाथ से कहीं कभी घड़ी गिर जाय और टूट जाय तो क्या होगा? घड़ी को कोई उठा ले जाय तो क्या होगा? यह सोचकर मेरा अब विचार हो गया है कि तुम्हारे लिये घड़ी लेना व्यर्थ है। घड़ी लेने में ६०-७० रु० खर्च हो जायेंगे और काम भी नहीं बनेगा। अभी तो तुम ऐसे ही काम करो जैसे पहले घड़ी के बिना काम चलाते रहते थे।

श्यामलाल- अच्छा जी।

इसी प्रकार कभी-कभी दो भाइयों में किस्सा चलता था। भोले श्यामलाल बहुत दिनों में समझ पाये कि पं० जी उसके साथ विनोद कर अपना जी बहला रहे हैं।

ऐसे थे हमारे गणपति शर्मा - उद्भट विद्वान्, सौम्यमूर्ति, विनोदी, मिलनसार, आर्यसमाज के दिग्गज पण्डित। ●●●

आर्य समाज बड़ी और एतिहासिक सफलता की ओर अग्रसर

आर्य प्रतिभा विकास संस्थान के 12 विद्यार्थियों ने यूपीएससी की प्रांरभिक परीक्षा के प्राप्त की सफलता

आर्य जगत की ओर से बधाई

–विनय आर्य

महर्षि दयानंद सरस्वती जी की प्रेरणाओं के अनुरूप आर्य समाज पिछले १५० वर्षो से शिक्षा के क्षेत्रा में अग्रणी भूमिका निभाता रहा है। आर्य समाज के माध्यम के संचालित गुरुकुल, कन्या गुरुकुल, आर्य विद्यालय, डीएवी संस्थान इसके सशक्त प्रमाण हैं। आर्य समाज की संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त करके असंख्य विद्यार्थी जहां एक ओर भारतीय संस्कृति, सभ्यता और संस्कारों का संरक्षण और संवर्धन कर रहे हैं, वहीं भारत राष्ट्र का विश्व में नाम रोशन कर रहे हैं।

शिक्षा सेवा के इस वृहद् क्रम में आर्य समाज द्वारा स्थापित आर्य प्रतिभा विकास संस्थान एक अनुपम संस्था है। आर्य प्रतिभा विकास संस्थान के माध्यम से आज लगभग ३८ विद्यार्थी सफलता प्राप्त कर भारत राष्ट्र उत्थान हेतु में उच्च पदों पर आसीन होकर ऐतिहासिक सेवाए दे रहे हैं। अत्यंत प्रसन्नता और हर्ष का विषय है कि विद्यार्थियां को मिल रही सफलता के इस क्रम में वर्ष २०२४-२५, यूपीएससी (सिविल) सेवा के प्रारंभिक परीक्षा परिणमा में आर्य प्रतिभा विकास संस्थान के १२ विद्यार्थियों ने सफलता प्राप्त करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

उच्च स्तरीय प्रतियोगी परीक्षा में सफलता प्राप्त करने वालों में १. अंकुश पुंबा, जम्मू, २. प्रद्युम्न बिजलवान, उत्तराखण्ड, ३. शिवम उत्तम, कानपुर यूपी, ४. अभिजीत तोमर, सहारनपुर, यूपी, ५. रोहित गोयल, हिसार, हरि. ६. भारतेंदु देशमुख, रायपुर, छत्तीसगढ़, ७. वंशिका तायल, बरनाला, पंजाब, ८. गौतम कुमार आर्य, झारखंड, ९. अभिषेक कुमार झा, सीतामढ़ी, बिहार, १०. रजनीकांत चौबे, कैमूर बिहार, ११. मोहित झा, हाजीपुर, बिहार, १२. नीरज पांडे, भोजपुर, बिहार सम्मिलित रहे।

उपरोक्त सभी विद्यार्थियों को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान, श्री सुरेश चन्द्र आर्य जी, अखिल भारतीय दयांनद सेवाश्रम संघ के प्रधान एवं जेबीएम ग्रुप के चेयरनमैन, श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य जी, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य जी ने समस्त आर्य जगत की हार्दिक बधाई और शुभकामनाए प्रदान की विद्यार्थियों को बधाई और सभी अधिकारियो के प्रति आभार।

-दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

पृष्ठ....१ का शेष

प्रयोजन सिद्ध करते रह सकते हैं। ऐसा राजा दण्डनीय और सम्माननीय पात्रों का विवेक नहीं रख सकता, जबकि विद्वान् और योगी राजा इसकी पहचान करके दण्डनीयों को दण्ड और सम्माननीयों को सम्मान देकर सम्पूर्ण राष्ट्र का हित सम्पादन करता है। जिस राष्ट्र में दण्डनीयों को दण्ड और सम्माननीयों को सम्मान तथा सत्य व उन्नति के मार्ग पर बढ़ने वालों को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, वह राष्ट्र अराजकता, हिंसा, भय, अशान्ति, अन्याय और तीनों प्रकार के दुःखों से ग्रस्त होता हुआ विनाश को प्राप्त होता है। अपराधी को दण्ड के विषय में भगवान् मनु का कथन है-

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः, दण्ड एवाभिरक्षति । दण्डः सुप्तेषु जागर्ति, दण्डं धर्म विदुर्बुधाः । (मनु.) अर्थात् उचित दण्ड ही प्रजा पर शासन करता है और दण्ड ही प्रजा की रक्षा करता है। दण्ड कभी शिथिल नहीं होता, इसलिए विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं।

कंजूस को दण्ड देने के विषय में महात्मा विदुर ने कहा है-

द्वावम्भसी निवेष्टव्यौ, गले बध्वादृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं, दरिद्रं चातपस्विनम्।। - विदुरनीति १/६५

अर्थात् धनवान् होते हुए भी परोपकार के कार्यों में दान न देने वाले और निर्धन होते हुए भी परिश्रम न करने तथा दुःख सहना न चाहने वाले को गले में भारी पत्थर बाँधकर गहरे जलाशय में डुबो देना चाहिए। यहाँ सम्पूर्ण प्रजा के लिए भी सन्देश है कि धनी व्यक्ति धन को ईश्वर का प्रसाद समझकर त्यागपूर्वक ही उपयोग करे। वह निर्धन व दुर्बल की अवश्य सहायता करे। उधर निर्धन व्यक्ति धनी से ईर्ष्या कदापि न करे, बल्कि स्वयं धर्मपूर्वक पुरुषार्थ करता रहे और दुःखों को भी सहन करने का अभ्यास करे। वह किसी के धन की चोरी करके धनी होने का प्रयास न करे अथवा बिना कर्म और योग्यता के धन, पद वा ऐश्वर्य पाने की इच्छा कभी नहीं करे। आधिभौतिक भाष्य २- (पवमानाः, स्वर्दृशः) वेदविद्या के प्रकाश से प्रकाशमान ब्रह्मतेज से सम्पन्न पवित्रात्मा योगी आचार्य वा आचार्या अपने विद्यार्थियों का विद्याभ्यास कराते हुए (अपघ्नन्तः, अराव्णः) विद्या को ग्रहण करने की इच्छा न करने वाले अथवा ग्रहण न करने वाले शिष्य और शिष्याओं की आवश्यक एवं उचित ताडना भी करें। (ऋतस्य, योनौ, सीदत) ऐसे आचार्य और आचार्या सम्पूर्ण सत्य विद्या के मूल कारण वेद अथवा परमात्मा में निरन्तर विराजमान रहते हैं।

भावार्थ- वेद ज्ञान से सम्पन्न निरन्तर योगनिष्ठ विद्वान् वा विदुषी को ही आचार्य वा आचार्या बनने का अधिकार होना चाहिए। उनको चाहिए कि वे अपने शिष्य वा शिष्याओं का प्रीतिपूर्वक और निष्कपट भाव से अध्यापन करें। जो विद्यार्थी विद्याग्रहण में प्रमाद करें और प्रीतिपूर्वक समझाने भी न समझें, उन्हें समुचित दण्ड अवश्य दें। इन विषय में ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण देते हुए लिखा है-

सामृतैः पाणिभिर्नन्ति गुरवों न विषोक्षितैः। लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।।

अर्थात् जो माता, पिता और आचार्य्य, सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रक्खें।

ध्यातव्य- इसी प्रकार माता-पिता आदि का ग्रहण करके भी अन्य प्रकार के आधिभौतिक भाष्य भी किये जा सकते हैं।

आध्यात्मिक भाष्य- (पवमानाः, स्वर्दृशः) यम-नियमों से पवित्र हुआ योगी ब्रह्म का साक्षात् करने वाला (अपघ्नन्तः, अराव्णः) सभी प्रकार के दोषों का परित्याग न कर पाने की अनिष्ट चित्तवृत्तियों को दूर करता है अर्थात् वह योगी पुरुष सभी प्रकार की अनिष्ट वृत्तियों को शनैः शनैः निरुद्ध करता चला जाता है। जब उसकी वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं, तब (ऋतस्य, योनौ, सीदत) वह योगी पुरुष सब सत्य विद्याओं के मूल परब्रह्म परमात्मा में विराजमान हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्म साक्षात्कार कर लेता है।

भावार्थ- जब कोई योगाभ्यासी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे यमों एवं शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान जैसे नियमों से स्वयं को पवित्र बना लेता है, तब उसकी चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध होने लगती हैं, जिससे वह ब्रह्म साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाता है।

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि बिना यम-नियमों के पालन किये कोई भी व्यक्ति योगी नहीं बन सकता।

आक्षेप-१ का समाधान समाप्त संसार भर के वेदविरोधी वा भ्रान्त पाठकगण! मेरे इन तीन श्रेणी के कुल पाँच भाष्यों को पढ़कर बतायें कि इस मन्त्र में हिंसा का विधान नहीं, बल्कि किसी भी राष्ट्र, समाज वा विश्व के कल्याण का सुन्दर उपाय सूत्र रूप में दर्शाया है। वास्तविक एवं बुद्धिमान् जिज्ञासु इस एक आक्षेप पर ही मेरे समाधान से वेद पर आक्षेप कर्तृताओं की भावनाओं तथा भाष्यकारों की कमियों को समझ जायेंगे, पुनरपि मैं अन्य आक्षेपों का उत्तर भी शनैः-शनैः देता रहूँगा।

पृष्ठ....३ का शेष

होती है और उस विभिन्नता से प्रेरित होकर उसके शब्दों में कितनी विभिन्नता आ जाती है! परन्तु उस समस्त विभिन्नता के पीछे सत्यता की एकता कैसी छिपी है। सत्य एक है, शब्द अनेक हैं। ईश्वर एक और उसके सूचक शब्द अनेक। वेदों के पश्चात् उनकी प्रतिद्वन्दिता में अनेक सिद्धान्त और मतों की स्थापना हुई, परन्तु क्या किसी संस्थापक ने इससे अच्छा कोई विचार पेश किया? कई नवीन धर्म इस बात का दावा करते हैं कि उन्होंने एक ईश्वरवाद की स्थापना की। यह सम्भव है कि अनेक-ईश्वरवाद के प्रचार की अवस्था में उन्होंने कुछ सुधार किया हो, परन्तु ईश्वर का जो स्वयं वेदों ने अति प्राचीन काल में स्वरूप रखा वह पीछे के मतों में दृष्टिगोचर नहीं होता।

समाजवाद का सबसे अच्छा सिद्धान्त वर्णाश्रम-धर्म है। यह समाज-सिद्धान्त सूर्य की भांति प्राचीनतम है और सूर्य के समान ही पूर्ण। इसमें पीछे से अवनति तो हुई, परन्तु उन्नति नहीं हुई। आधुनिक साम्यवाद पूंजीवाद की अपेक्षा उत्कृष्ट हो सकता है, परन्तु यह न टिकाऊ है न सर्वोत्कृष्ट। मानव-जाति के अनेक व्यक्ति जब स्वभाव से ही सम नहीं तो उनका जीवन का पुरोगम समान कैसे हो सकता है? कहीं-न-कहीं तो भेद करना ही पड़ेगा। यह भेद गुण-कर्म-स्वभावानुसार ही अत्यन्त नैसर्गिक और कल्याणप्रद हो सकता है।

इसी प्रकार जीवन के अनेकानेक सिद्धान्त हैं जिनका वेदोक्त रूप ही पूर्णतम कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक बात पर विचार कीजिए। समाज की नींव है विवाह-व्यवस्था। वेदों में विवाह की एक-पति-भाव और एक-पत्नी-भाव की जो व्यवस्था है उससे अच्छी कोई व्यवस्था नहीं है-

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।। (ऋग्वेद १०/८५/४२)

इसमें दाम्पत्य भाव का कितना उच्चतम चित्रण है! स्त्री-पुरुष घर में साथ रहें। कभी अलग न हों, पुत्रों और पौत्रों के साथ आनन्द से रहें। वैदिक काल के पश्चात् विवाह-व्यवस्था में जो-जो जहां-जहां परिवर्तन हुए, उन्होंने समाज में आपत्तियां तो उत्पन्न कर दीं, उनसे समाज की बुराइयां दूर नहीं हुईं। आजकल वैज्ञानिक युग में विवाह में जो सुधार हो रहे हैं उनसे विवाह-व्यवस्था की जड़ ही कट रही है। अमीर लोग धोखे में हैं। वे समझते हैं कि दाम्पत्य दासता को दूर करने से वे सुखी हो जाएंगे, परन्तु वे यह नहीं देखते कि जिस समाजरूपी वृक्ष को वे सींचना चाहते हैं उसी की जड़ कट रही है! आजकल प्रत्येक युवक पति तो बनना चाहता है परन्तु उसको पिता बनना स्वीकार नहीं। प्रत्येक युवती को माता और जननी बनने से घृणा है। वह कर्तृतव्य की मर्यादा को दासता की बेड़ी समझकर तोड़ना चाहती है। यह वैदिक सिद्धान्तों के ऊपर सुधार है या बिगाड़? इसी प्रकार एक और बात लीजिए। कहते हैं कि वैदिक काल में मनुष्य जंगली थे। रहे होंगे। हमको आक्षेप नहीं। सृष्टि के आरम्भ में जंगल बहुत थे। ऋषि लोग जंगल में ही रहते होंगे। भवन-निर्माण की व्यवस्था पीछे से हुई होगी जबकि वैदिक ज्ञान को कार्य में परिणत किया होगा। परन्तु जंगल में रहना पाप नहीं, जंगल-कानून (सूं वि श्रनदहसम) को बरतना पाप है। आज उच्च और गगनचुम्बी भवनों के रहने वाले भेड़ियों और चीतों की तरह एक-दूसरे के रक्त के प्यासे रहते हैं। वेद के आदर्श को देखिए-

"अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या" (अथर्ववेद ३/३०/१)

इस प्रकार एक-दूसरे के साथ व्यवहार करो जैसे गाय अपने नवजात बच्चे के साथ करती है। इतना उच्च आदर्श मानव-जाति के शैशव-काल में कैसे स्थापित हो सकता है जब तक कोई पूर्ण शक्ति उनका नेतृत्व न करे, और यदि वैदिक आदर्श इतना उच्च हो सकता है तो सृष्टि के आरम्भ से उसका होना उसके ईश्वरकृत होने का अकाट्य प्रमाण है।

यह सम्भव है कि आर्य जाति समय-समय पर इस आदर्श से गिर गई हो और उसने सन्मार्ग को छोड़कर ठोकरें खाईं हों, परन्तु यह तो होगा मनुष्यों का दोष, उनकी निर्बलता, उनका स्वार्थ। इसमें वेदों का तो कोई दोष नहीं। श्री पं० जवाहरलाल जी ने शिकायत की है कि आर्य समाज और स्वामी दयानन्द उन सिद्धान्तों का परित्याग करना चाहते हैं जो सुधार के रूप में वेदों के पश्चात् हिन्दू सुधारकों की ओर से किए गए। परन्तु यदि विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि वह वैदिक सिद्धान्तों को उन्नतिशील नहीं, अपितु अवनतिशील बनाते हैं। उदाहरण के लिए, श्री शंकर स्वामी ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। लोग समझते हैं कि वैदिक सिद्धान्तों का यह सुधार है। बौद्ध मत का खण्डन करने के लिए सम्भव है यह कुछ लाभदायक ठहरा हो, परन्तु इस सिद्धान्त ने वैदिक धर्म की सजीवता नष्ट करके मायावाद का प्रचार कर दिया जो वैदिक ऋषियों को कभी अभीष्ट न था। इसी प्रकार हिन्दू जाति ने वैदिक धर्म की प्राचीन शुद्धता को छोड़कर अनेक नवीन बातें मिला दीं, जिनके कारण आज सनातन धर्म चूं-चूं का मुरब्बा हो गया है। यह सुधार नहीं अपितु बिगाड़ है। इसीलिए स्वामी दयानन्द ने कहा था कि 'वेदों को ओर लौटो' (ठंबा जव जीम अमकें)। क्यों? इसलिए कि सन्मार्ग छोड़ आए। सीधा रास्ता पीछे रह गया। किस ओर चल रहे हो? वह अभीष्ट स्थान पर पहुंचानेवाला नहीं, अपितु दूर ले जानेवाला है। लौटो! लौटो!! जितनी जल्दी लौटोगे उतना ही अच्छा रहोगे। जिस मार्ग पर चल रहे हो उस पर एक कदम आगे बढ़ाना ही निर्दिष्ट स्थान से दूर होना है।

-प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' द्वारा सम्पादित
'गंगा ज्ञान सागर' से साभार

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र आर्यमित्र ०४ एवं ११ जुलाई, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

पृष्ठ १ का शेष.....

इतिहासों का अवलोकन करें तो उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि आत्मिक बल ईश्वर-भक्तों की ही सम्पत्ति है।

उदाहरण के रूप में पता तो लगाइए कि क्या कारण था कि राजा हरिश्चन्द्र इतनी आपत्तियों के उपस्थित होने पर भी अपने सत्य पर दृढ़ रहा? क्या कारण था कि महात्मा रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा पाते ही राज्य को तुच्छ समझकर त्याग दिया और वन को चले गये? क्या कारण था कि लक्ष्मण जी ने सब प्रकार के सुखों का परित्याग कर भाई के साथ वन को जाना स्वीकार किया? क्या कारण था कि सीताजी जैसी सुकुमारी रानी ने वनों में भ्रमण करना स्वीकार किया और राज्यादि के आनन्दों की कुछ भी इच्छा न की? क्या कारण था कि राजा मोरध्वज का शरीर मध्य से चीरा जाए और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने शरीर को चिरवा दे? क्या कारण था कि महात्मा भर्तृहरिजी ने अपने सारे राज्य को तुच्छ समझकर जङ्गल में जाना स्वीकार किया? क्या कारण था कि गुरु तेगबहादुर ने यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया? क्या कारण था कि गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लड़कों ने दीवार में चुने जाकर मृत्यु का वरण किया? क्या कारण था कि महात्मा पूर्णभक्त ने सहस्त्रों आपत्तियों को सहन किया, परन्तु उसका आत्मा पाप की ओर आकर्षित न हुआ? क्या कारण था कि बालक हकीकतराय ने बारह वर्ष की अवस्था में यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया, परन्तु धर्म को नहीं त्यागा? क्या कारण था कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने सारे भारतवर्ष का शत्रु बनना स्वीकार किया, ईंट और पत्थर खाना स्वीकार किया, परन्तु अधर्म को नहीं बढ़ने दिया और धर्म के विरुद्ध चलना महापाप समझा? आप विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह आत्मिक बल था जिसने इन महात्माओं को संसार के मुकाबले में विजयी बनाया।

प्रिय पाठकवृन्द ! क्या आपने कभी विचार किया कि वे कौन से कारण थे जिन्होंने रानी पद्मिनी को प्रचण्ड अग्नि में भस्म होकर मरना स्वीकार किया-कराया, परन्तु यवन बादशाह की बेगम बनना स्वीकार नहीं किया? क्या कारण था जिसने राजा दाहर की रानी को चिता में जलकर मरने पर कटिबद्ध किया? वह कौन-सी शक्ति थी जिसने कृष्णकुमारी को जलती हुई चिता पर बिठा दिया? कहाँ तक गिनाएँ। इस भारतभूमि में तो असंख्यात दृष्टान्त दृष्टिगोचर होते हैं जिनके नाम इस संसार में नक्षत्रों के समान देदीप्यमान हैं। आप लोग इसका उत्तर यही देंगे कि इनमें धर्मभाव था जिसने इन सुकुमारी सतियों को प्रसन्नतापूर्वक इन आपत्तियों के सहने पर सन्नद्ध कर दिया। यह धर्म क्या वस्तु है? केवल ईश्वरोपासना! बस, आप समझ गये होंगे। संसार में धर्म और अधर्म या पाप और पुण्य जो दो शब्द हैं, इनका आशय केवल ईश्वरोपासना और प्रकृति की उपासना है। ईश्वर-उपासना धर्म है जिससे आत्मिक बल मिलता और वह ऐसे उन्नति के कार्य करता है जिनसे संसार में सुखों की प्राप्ति होती है। दूसरे, ईश्वरोपासना से ईश्वरीय शक्ति अर्थात् वैदिक ज्ञान की प्राप्ति होकर जीव की ज्ञानशक्ति बढ़ जाती है। संसार में जितने योगी हुए हैं, जिन्होंने अपने आत्मा को प्रकृति से अलग करके ज्ञान की ओर लगाया है, संसार में वे सब ज्ञानी और विद्वान् कहलाये और उनका नाम और काम आज तक संसार में विख्यात है, परन्तु जितने प्रकृति के उपासक हुए, वे आत्मिक बल से रहित, दास होकर चले गये। वे जीवन में मूर्खता और दुःखों से घिरे रहे और मरने के पश्चात् भी कष्ट के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिला और आज उन्हें कोई जानता तक भी नहीं।

प्रियवरो! आत्मा एक राजा है जिसका देश यह शरीर है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि इत्यादि इसके कर्मचारी हैं। यदि राजा बलवान् होता है तो अपने कर्मचारियों पर शासन करता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। राजा के बलवान् होने पर उसके कर्मचारी उसके दास होकर उसे प्रत्येक प्रकार का सुख देते हैं, परन्तु जिस समय राजा निर्बल हो जाता है उस समय कर्मचारी उसको दबा लेते हैं और वह प्रत्येक की चापलूसी करता है और उनके लिए भोजन जुटाता है। यद्यपि यह कार्य इन कर्मचारियों का था कि अपना भोजन प्राप्त करके अर्थात् अपने विषयों को भोगते हुए राजा के लिए भोजन अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराते, परन्तु आत्मा को निर्बल देखकर ये ऐसे आलसी और अहंकारी हो जाते हैं कि राजा को स्वयं इनके भोजन की चिन्ता लगी रहती है। उसकी सारी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा बिक जाती ही। वह अपने-आपको राजा के स्थान में दास अनुभव करने लगता है। अब उसका कर्त्तव्य यह हो जाता है कि साईस की भाँति घोड़ों के पालन-पोषण में लगा रहे। उसे अपने वास्तविक लक्ष्य का तनिक-सा भी ध्यान नहीं रहता कि कहाँ जाना है। आत्मिक प्रबलता की दशा में वह जिन कार्यों को तुच्छ समझता था, अब आत्मिक निर्बलता की दशा में उन्हें आवश्यक कार्य समझता है। प्रबलता की दशा में जिन पदार्थों का ज्ञान उसे सुगमता से हो जाता था, वही अब उसके विचार में जटिल प्रतीत होता है।

भ्रातृवर्ग! यह तो आप जानते हैं कि जिस जाति का नायक सरदार योग्य नहीं होता, वह जाति सदा असफल रहती है और जिस देश का राजा अयोग्य है, उस देश की प्रजा सदा कष्ट सहती है। राजा का कार्य राजा से होता है, दास से नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रबल आत्मा के कार्य निर्बल आत्मा से नहीं हो सकते। संसार में भी देखा जाता है कि जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ उसके वश में न हों तो उसका कुटुम्ब भी उसके वश में नहीं रहता, और जो अपने कुटुम्ब पर शासन न कर सके वह अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता, और जो अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता वह अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता और जो अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता वह प्रान्त पर शासन नहीं कर सकता, और जो प्रान्त पर प्रशासन के योग्य न हो वह देश पर शासन नहीं कर सकता, और जो एक देश पर भी शासन नहीं कर सकता वह संसार पर शासन किस प्रकार कर सकता है? यहाँ से पता लगता है कि संसार में सफलता की सबसे बड़ी सीढ़ी आत्मा का इन्द्रियों और मन पर शासन है और इन्द्रियों पर मन के शासन के लिए आत्मा को बहुत भारी शक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि ये इन्द्रियाँ संसार के पदार्थों को मन के द्वारा आत्मा के सम्मुख प्रस्तुत करके धोखा देना चाहती हैं, परन्तु प्रबल आत्मा, जिसका ज्ञानगुण परमात्मा की प्रबल शक्ति से सहायता पाकर उन्नति कर चुका है, जिसे प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है, वह इन इन्द्रियों और मन के धोखे में नहीं आ सकता। जो इन्द्रियों और मन को वश में करने योग्य बल आत्मा में रखता है, वह कृतकार्य हो सकता है।

श्री वेदपाल वर्मा शास्त्री जी की तृतीय पुण्यतिथि

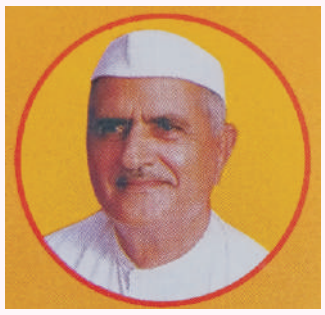

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के पूर्व प्रतिष्ठित सदस्य व वैदिक विद्वान् विद्यावाचस्पति स्व. वेदपाल वर्मा शास्त्री जी की तृतीय पुण्य तिथि का कार्यक्रम दिनांक ०८ जुलाई, २०२४ को सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर उनके परिवार के सदस्यजन एवं समाज के सम्मानित लोगों द्वारा उनके मूल निवास शाहपुर, मुजफ्फर नगर एवं पल्लवपुरम्, मेरठ के निवास पर यज्ञ एवं सत्संग का आयोजन किया गया। जिसमें स्व. वेदपाल शास्त्री जी द्वारा लिखित पुस्तक ''वेद में क्या और कहाँ'' का वितरण किया गया। सभी ने उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके बताये वैदिक मार्ग पर चलने का संकल्प लिया।

सभा प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने शास्त्री जी को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए सच्चा ऋषि भक्त बताया।

ओ३म्
आर्य समाज की पहल
आर्थिक रूप से कमजोर बारहवीं पास छात्रों के आगे की पढ़ाई के लिए छात्रवृति योजना
आर्य प्रगति छात्रवृत्ति परीक्षा 2024
• पात्रता: आवेदन प्राप्ति की अंतिम तिथि तक बारहवीं कक्षा या समकक्ष कक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य है।
• आयु सीमा: आवदेन की अंतिम तिथि तक 16 से 25 वर्ष ।
• छात्रवृत्ति हेतु अभ्यर्थियों का लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर चयन किया जाएगा।
• पात्रता परीक्षा ऑनलाइन वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के माध्यम से ली जाएगी।
• पात्रता परीक्षा का विषय सामान्य ज्ञान और रिजनिंग पर आधारित होगा।
आवेदन की अंतिम तिथि 15 जुलाई 2024
ऑनलाइन परीक्षा तिथि 21 जुलाई 2024 11:00 AM IST
आवेदन करने के लिए वेबसाइट www.aryapragati.com
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
9311721172
E-mail: dss.pratibha@gmail.com

यजुर्वेद पारायण यज्ञ सफलतापूर्वक सम्पन्न

यज्ञ तीर्थ गुधनी, बिल्सी में चल रहे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की दिनांक १९ जून, २०२४ को विधिवत पूर्ण आहुति हो गई। इस अवसर पर पूरे जनपद से अनेक राजनेता व गणमान्य व्यक्ति पधारे। आचार्य संजीव रूप के निर्देशन में होने वाले यज्ञ महोत्सव में बिल्सी विधायक हरीश शाक्य ने लगातार १ घंटे तक यज्ञ में आहुतियां देकर राष्ट्र कल्याण की कामना प्रभु से की बिसौली से मुख्य यजमान सुभाष चंद्र अग्रवाल रवि प्रकाश अग्रवाल इस्लामनगर सेपूर्व अध्यक्ष वीरेंद्र लीडर श्रवण कुमार आर्य उझानी से मुख्य यजमान प्रदीप चंद्र गोयल पंकज सक्सेना बदायूं से मुख्य अजमल धीरज सक्सेना ने भी यज्ञ में आहुतियां दी । देश भर से अनेक श्रद्धालु भी पधारे । आचार्य संजीव रूप ने यजमानों से बुराइयां छोड़ने का आवाहन किया, अनेक लोगों ने बुराइयाँ छोड़ने का संकल्प लिया । लगभग पाँच सौ से अधिक यजमानों को सम्मानित किया गया। यज्ञ में पधारे सभी श्रद्धालुओं को साहित्य व कैलेंडर आदि भेंट किए गए ।मुकेश आर्य व प्रश्रय आर्य ने सुंदर भजन गाए। इस अवसर पर श्री धीरज सक्सेना, श्री प्रदीप चन्द गोयल, श्री रवि प्रकाश एवं यज्ञ के ब्रह्मा सुचिशद महाराज आदि की गरिमामयी उपस्थिति रही।

कार्यक्रम में अजीत सक्सेना, देशराज सक्सेना, ललित कुमार, स्वामी विवेकानंद,आभा गोयल, डा. विजय सिंह सोलंकी,श्रद्धा सक्सेना, साहू सावेद्र ,नीरज सांई, वैद्य विशाल जौहरी व एक हजार से अधिक लोग मौजूद रहे।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।